प्रोफ़ेसर प० मन्तेयफ़ेल

जीव-जगत की कहानियां

राद्गा प्रकाशन
मास्को

पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लिमिटेड
५ ई, रानी झांसी रोड, नई दिल्ली-११००५५

राजस्थान पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा) लि.
चमेलीवाला मार्केट, एम. आई. रोड, जयपुर-302001

अनुवादक : नरेश वेदी
डिज़ाइनर : ग० निकोल्स्की

П. Мантейфель
РАССКАЗЫ НАТУРАЛИСТА
На языке хинди

P. Manteifel
A NATURALIST'S STORIES
In Hindi

$M\frac{4803010102-627}{031(01)-89}$ 479—89

सोवियत संघ में प्रकाशित

अनुक्रम

भूमिका

प्रकृति से कितने ही तरीक़ों से प्यार किया जा सकता है!

उससे कोई इसलिए भी प्यार कर सकता है कि ऐसा न कर पाना और यह न कह उठना कि "उफ़, कितना सुहावना है!" सामान्यतः असंभव है। ऐसा कहते हुए वह न वन और न पक्षियों के कलरव का ही अनुभव करता है।

दूसरी ओर प्रकृति से कलाकार की तरह, सच्चे ढंग से, उसके रहस्यों के भीतर प्रवेश करने को सदा प्रयत्नशील रहते हुए भी प्रेम किया जा सकता है।

फिर उससे स्वामी की तरह भी प्रेम किया जा सकता है, जो उसकी सुंदरता की ओर आकृष्ट होकर उसका पैनी निगाह से अध्ययन करता है और साथ ही उसे निदेशित करने, सुधारने तथा उसकी निधि में वृद्धि करने की भी कोशिश करता है। इस पुस्तक के रचयिता प्रोफ़ेसर प्योत्र अलेक्सांद्रोविच मन्तेयफ़ेल (१८८३–१९६०) का प्रकृति से इसी भांति का प्रेम रहा है।

मुझे उनके साथ जंगल की सैर करने का तब सौभाग्य मिला, जब मैं एक छोटी लड़की ही थी। मुझे लगता था कि उनकी पांच ज्ञात मानवीय इंद्रियों से अधिक इंद्रियां हैं। बड़े क़द और चौड़े कंधोंवाला यह आदमी जंगल में पग धरता हुआ चलता जाता था और वह सभी कुछ देखता जाता था, जो उनके शिक्षार्थियों की तेज़ आंखों से छिपा रहता था। उन्हें हर सुरसुर, हर सरसराहत सुनाई देती थी और प्रकृति गोया उनमें समा जाती थी।

वह पक्षियों को सीटी बजाते हुए आहटहीन चाल से आगे बढ़ते ही चले जाते थे, और वे इस सीटी का जवाब देते थे।

परंतु सबसे दिलचस्प बात कुछ बाद में शुरू हुई – उन्होंने हमें बारीक से बारीक चीज़ों, हर हरकत के बारे में बताया, निष्कर्ष निकाले और अंततः इस सबका सामान्यीकरण किया।

दृष्टिपात से अवलोकन और फिर प्रयोग – यही था इस वैज्ञानिक का नारा। प्रस्तुत पुस्तक की सभी कहानियों पर इस नियम की प्रत्यक्ष छाप है। ये महज़ किसी शिकारी की नहीं, बल्कि एक बड़े वैज्ञानिक की कहानियां हैं, जो अपने को पशु-पक्षी की मनमोहक कहानियों के वर्णन तक ही सीमित न करके पाठक को कुछ निश्चित निष्कर्ष निकालने के लिए भी प्रेरित करती हैं। बेशक, इस पुस्तक में उनकी सब कहानियां सम्मिलित नहीं हैं। उनकी सूची बहुत लंबी है।

प्रो० मन्तेयफ़ेल का सारा जीवन (सिवाय पहले विश्व युद्ध और १९२१–१९२२ में लाल फ़ौज में उनकी सेवा के वर्षों के) अपने प्रिय विज्ञान को ही समर्पित रहा। उन्होंने उत्तरी याकूतिया से दक्षिण उज़्बेकिस्तान तक, साइबेरिया से कज़ाख़स्तान तक पूरे देश का भ्रमण किया था। जिन-जिन जगहों की उन्होंने यात्रा की, उनका उल्लेख करना कठिन है।

उनका वैज्ञानिक कार्य युवावस्था में आरंभ हुआ था। उनके शिक्षकों में विख्यात वैज्ञानिक विलियम्स तथा प्रसिद्ध रूसी पक्षिविद मेन्ज़बीर थे।

मन्तेयफ़ेल के बहुत से कार्यों ने बड़ी ख्याति प्राप्त की। इनमें सेबल की कृत्रिम संतानोत्पत्ति, ख़रगोशों एवं चितरालों के झुंडों का अध्ययन और मूल्यवान समूरवाले जानवरों के जलवायु-अनुकूलन संबंधी कार्य प्रमुख हैं।

मास्को के चिड़ियाघर, जहां मन्तेयफ़ेल ने चौदह साल वैज्ञानिक कार्य का संचालन किया था, वैज्ञानिक अभियानों और सोवियत देश के असंख्य पशु-संरक्षणालयों ने इस खोज-कार्य के आधार का काम किया था।

अपनी खोजों में प्रो० मन्तेयफ़ेल सदैव पशु का अध्ययन उस वातावरण में करते थे, जिसमें वह रहता था, क्योंकि आसपास के वनस्पति तथा जीव-जगत और मिट्टी की विशेषता जानकर ही उस जानवर की सच्ची जानकारी हासिल की जा सकती है।

वैज्ञानिक होने के साथ-साथ वह श्रेष्ठ अध्यापक और युवा पीढ़ी के प्रतिभाशाली पथप्रदर्शक भी थे। उन्होंने कई शिक्षालयों में अध्यापन-कार्य किया और उनके कई शिष्यों ने, जो अब वैज्ञानिक हैं, विज्ञान के मार्ग पर अपने पहले क़दम तभी रखे, जब वे प्रो० मन्तेयफ़ेल द्वारा संस्थापित बाल प्राणीविदों की मंडली के सदस्य बने थे।

मास्को खाल तथा समूर-संस्थान में अपने अध्यापन-कार्य के काल में उन्होंने एक हज़ार से अधिक आखेट एवं पशुविदों को तैयार किया था। उक्त संस्थान में वह वर्गीकरण एवं जीव-प्रविधि जैसे नये और अत्यंत रोचक विभाग के प्रधान थे। उन्होंने युवाजन को न केवल जीव-विज्ञान तथा अपनी अध्ययन-प्रणाली के प्रति, बल्कि मातृभूमि के प्रति प्रेम, धैर्य, अवलोकन-सटीकता, मैत्री तथा बंधुत्व की भावना, पौरुष्य तथा सहनशक्ति की भी शिक्षा दी।

ऐसे थे वह व्यक्ति, जिन्होंने इस पुस्तक की रचना की।

येलेना उस्पेन्स्काया,
लेखिका

दिलचस्पी से परिपूर्ण जीवन

एक बार की बात है, मास्को के चिड़ियाघर में काम करनेवाले तीन नौजवान जीवविज्ञानियों के साथ मैं साइबेरिया में घूम रहा था। हम शक्तिशाली येनिसेई नदी की सहायक कान नदी तक पहुंच गये।

हमने नाव में बैठकर नदी में यात्रा की, फिर असीम शारदीय चरागाहों को पैदल पार किया और आख़िर एक पर्वत-श्रेणी की तलहटी में पहुंच गये। चौड़ी और शांत कान नदी यहां एक प्रचंड धारा का रूप लेकर एक तंग घाटी में से रास्ता बनाकर निकलती है। पहाड़ों पर हमारी दिलचस्पी अल्ताई रंगदुनी नामक कृन्तक में हुई। यह छोटा सा, चूहे जितना बड़ा ही जानवर है, यद्यपि ख़रगोश से इसका अधिक निकट संबंध है। ख़रगोश की ही तरह इसके भी बालदार पंजे और आगे की तरफ़ दोहरे ऊपरी कर्तक दंत होते हैं, मगर इसके कान छोटे होते हैं और दुम नहीं होती।

हम इन जानवरों की एक बस्ती के पास ही पहुंच गये। वे सरदियों के लिए चारा जमा करने में लगे हुए थे। वे घास या झाड़ियों की टहनियों को कुतर-कुतरकर पत्थरों में अपने भूमिगत घरों के पास सुखाने के लिए सावधानी से धूप में फैला रहे थे। फिर वे चारे को ले जाते थे और आगे निकली बड़ी-बड़ी चट्टानों के नीचे समेटकर रखते जाते थे।

हमने इन कृन्तकों द्वारा जमा किये जानेवाले चारे का अध्ययन किया और यह देखकर चकित हो गये कि वह कितना विविध और पौष्टिक है। चट्टानों के नीचे हमें इन परिश्रमी

नन्हे-नन्हे प्राणियों के लिए विटामिनों, वसाग्रों, कार्बोहाइड्रेटों ग्रौर ग्रौषधिक पदार्थों का प्रदाय सुनिश्चित करनेवाले एल्बुमेन-प्रचुर फलीदार तथा कई ग्रन्य पौधे मिले।

यह देखना बड़ा दिलचस्प था कि ग्रासमान में घटाग्रों के घिर ग्राने ग्रौर वर्षा शुरू हो जाने से ये प्राणी कितने व्याकुल हो जाते थे। इन चिंचियानेवाले जानवरों ने ग्रधसूखी घास को जल्दी-जल्दी उठाया ग्रौर उसे छिपाने के लिए लपकने लगे। लगता था, जैसे वे सचमुच सोचनेवाले जानवर हैं। लेकिन हम इस बात को भली भांति जानते थे कि यह बाह्य उद्दीपन के प्रति मात्र उनकी स्वाभाविक प्रतिक्रिया थी।

वर्षा, जो उनके जीवन के हज़ारों वर्षों के संघर्ष में बार-बार उनके शीतकालीन भंडारों को नष्ट कर देती थी, उनके लिए एक निश्चित ग्रापदा-संकेत बन गई है, इसलिए पहली बूंदों के गिरने के साथ वे चारे को छिपा देते हैं। उनके जो भाई-बंधु ऐसा नहीं कर पाते, वे सरदियों में भूखे रहते हैं ग्रौर भूखों मर तक सकते हैं, जबकि परिश्रमी जीव ज़िंदा रहते हैं।

ताइगा में हमारी मात्वेई गोलोव्कोव से मुलाक़ात हुई, जो एक बढ़िया मछियारा, शिकारी ग्रौर उत्साही प्रकृतिविद हैं। उन्होंने हमें बताया कि सरदियों के भारी हिमपातों के समय साइबेरियाई जंगल ग्रौर पहाड़ी भेड़ें रंगदुनियों के निवासस्थानों के पास ग्राकर उनके चारे के उन भंडारों को सफ़ाचट कर जाते हैं, जिन्हें वे हिमपात से बचाने के लिए चट्टानों के नीचे छिपाकर रखते हैं ग्रौर इस तरह उन्हें भूखे मरने के लिए मजबूर कर देते हैं। सेबल ग्रौर एर्मिन जैसे हिंस्र पशु मुक़ाबलतन बहुत कम नुक़सान करते हैं। ये प्राणी सनातन शत्रु हैं। सेबलों के ग्राखेट-स्थलों में एर्मिन या साइबेरियाई मार्जारिका नहीं मिल सकते, क्योंकि सेबल उन्हें खदेड़ देंगे। ख़ुद साइबेरियाई मार्जारिका एर्मिनों को नहीं रहने देंगे, जो इन कृन्तकों के सबसे ख़तरनाक दुश्मन हैं। तेज़ ग्रौर फुर्तीले एर्मिन उनके खोदे हर छेद या बिल में घुस सकते हैं।

मात्वेई प्रकृति के एक बहुत ही पैने प्रेक्षक थे। उन्होंने हमें बताया कि एक बार उन्होंने देखा कि एक भूरा उल्लू ग्रपने रोयेंदार पंजों से हपुषा की टहनी से चिपका हुग्रा है। बूढ़े मात्वेई ने बड़ी सावधानी से झाड़ी का चक्कर लगाया। उल्लू ने उन पर से निमिष मात्र को भी ग्रांखें नहीं हटाई – उसने ग्रपने सिर को एक पूरे चक्कर में, बल्कि उससे भी ज़्यादा घुमा दिया। बूढ़े मात्वेई को हैरानी हुई, "क्या इसकी गरदन में कोई हड्डी नहीं है? उसने किस तरह बिना किसी पेड़ से जा टकराये उड़कर बीच हवा में ग्रपनी गरदन सीधी कर ली?"

मैंने बूढ़े मात्वेई को बताया कि पक्षियों ग्रौर विशेषकर उल्लुग्रों की गरदनें बड़ी लोचदार होती हैं, उनके सिर उनकी गरदनों से ग्रादमियों ग्रौर दूसरे स्तनप्राणियों की तरह दो संधियों से नहीं, बल्कि एक ही संधि से जुड़े होते हैं। इसके ग्रलावा, पक्षियों का हर ग्रैव कशेरुक काफ़ी विस्थापित हो सकता है।

बूढ़े मात्वेई ने हमें एक खड़ी चट्टान दिखाई, जिस पर दो विशालकाय भूरे भालुग्रों में

भयंकर संग्राम हुआ था, जबकि वह मादा भालू, जिसके पीछे वे दोनों जान देने पर तुले हुए थे, पास ही बैठी हुई थी और उनकी तरफ़ ज़रा भी ध्यान नहीं दे रही थी। उसे जैसे न तो दोनों योद्धाओं की चिंघाड़ें सुनाई दे रही थीं और न एक-दूसरे पर पड़नेवाले उनके भारी-भारी प्रहार। आख़िर एक करारे वार से दोनों में से कमज़ोर प्रतिस्पर्धी खड्ड में गिर गया। ख़ासी लंबी देर तक वह पत्थरों और चट्टानों की धसान के साथ-साथ खड़े ढाल पर लुढ़कता गया। आख़िर जब वह खड़ा हुआ, तो उसने ऊपर की तरफ़ एक उदासीभरी नज़र डाली। विजेता चट्टान के किनारे खड़ा उसकी हर हरकत को देख रहा था। कुछ समय के बाद पराजित भालू लंगड़ाता हुआ वहां से चला गया।

बूढ़े मात्वेई का तंबू कान के तट के पास ही था। उसके पास ही उनकी एक ऐसी मुठ-भेड़ हुई थी, जो, उनके कथनानुसार, वह कभी नहीं भूलेंगे। एक रात को वह तंबू के बाहर अलाव में लकड़ियां डालने के लिए आये। उनके पास लकड़ी क़रीब-क़रीब बिलकुल ख़त्म हो गई थी और इसलिए वह जंगल के छोर तक चले गये। उन्होंने गट्ठर भर सूखी झाड़ियां बटोरीं और उठाकर अपने तंबू की तरफ़ चले ही थे कि छोटे-छोटे फ़र-वृक्षों के एक झुंड के पीछे उन्हें एक स्याह आकृति नज़र आई। बूढ़े मछियारे ने सोचा, "सांभर होगा कोई, और क्या!" और हुश करके दुतकार दिया। अगले ही क्षण एक विशालकाय भालू ने उन्हें फ़ौलादी जकड़ में कस लिया। बूढ़े मात्वेई और उन पर हमला करनेवाले के बीच यदि झाड़ियों का गट्ठर न होता, तो यह आलिंगन उनकी जान लेकर ही छूटता।

झपट्टा मारने के साथ भालू के पैर ज़मीन से उठ गये। दोनों ही गिर गये और किनारे के खड़े ढाल पर लुढ़कते हुए नदी में जा पड़े। पानी के नीचे भालू ने बूढ़े मात्वेई को अपनी पकड़ से छोड़ दिया। पानी का ज़ोर भालू को कुछ मीटर आगे बहा ले गया, फिर उसने पानी से निकली एक चट्टान को जकड़ लिया। बूढ़े मात्वेई पानी में डूबे एक ठूंठ से चिपट गये, बस उनकी नाक ही पानी के ऊपर दिखाई देती थी। गरदन तक पानी में खड़ा भालू तेज़ी के साथ सभी तरफ़ नज़र डालता आदमी के दिखाई देने के इंतज़ार में था। फिर वह धीरे-धीरे किनारे की तरफ़ चल दिया। किसी तरह हाथ-पैरों के बल वह नदी से निकल आया। उसके बाल भरे चमड़े से पानी की धारें चू रही थीं। वह अपने पिछले पंजों पर खड़ा हो गया और ज़ोर-ज़ोर से सूं-सूं करता अपने नथुने को इधर-उधर घुमाने लगा। मगर बूढ़े की गंध को वह नहीं पकड़ पाया। फिर वह भदभदाता हुआ किनारे पर चढ़ गया, मछियारे के पुराने पदचिन्हों को पा लिया और उनके साथ-साथ तेज़ी से जंगल में चला गया।

एक-दो मिनट बाद, जब भालू जंगल में ग़ायब हो गया, तो बूढ़े मात्वेई सावधानी के साथ अपने तंबू में गये और अपनी बंदूक उठा ली। अलाव की रोशनी में बढ़िया-से-बढ़िया जगह लेकर उन्होंने भालू को चुन-चुनकर गालियां देकर चुनौती देना शुरू किया।

"मगर वह बड़ा चालाक जानवर था," बूढ़े मात्वेई ने कहा। "मेरी चुनौती उसने मंज़ूर

की ही नहीं। वह जानता था कि यह झाड़ी के पीछे से अचानक हमले जैसा निरापद काम नहीं है।"

इस कहानी ने मेरे नौजवान साथियों की कल्पना को झंझोड़ दिया। मैंने उन्हें बताया कि बहुत कम भालू ही नरहत्यारे होते हैं। आम तौर पर ये जानवर बहुत ही सतर्क होते हैं और अगर वे आदमी के सामने पड़े जायें, तो उसकी निगाह से निकलने की कोशिश करते हैं।

ऊपर की तरफ़ जाते समय हमें किनारों पर अकसर स्टरलेट मछलियों के सिर पड़े मिलते थे – ऊदबिलावों की दावतों के अवशेष। सोवियत संघ के कई भागों में यह जानवर दुष्प्राप्य हो गया है, शिकारियों ने इसका लगभग पूरी तरह से सफ़ाया कर दिया है।

मछियारा ऊदबिलाव को अपना विश्वसनीय मित्र मानता है। कारण यह है कि सरदियों में स्टरलेट नदी के तल में गहरे गढ़ों में छिप जाती हैं, जहां वे बड़ी संख्या में एकत्र हो जाती हैं। ऊदबिलाव उनके शीतकालीन ठिकानों का आसानी से पता चला लेता है और उनके सामने के तट पर अपना अस्थायी बिल खोद लेता है। इन निशानों की बदौलत बूढ़े मात्वेई को पता चल जाता है कि मछलियां कहां हैं। मछियारा और ऊदबिलाव दोनों जब मछलियों के अड्डे का सफ़ाया कर देते, तो ऊदबिलाव नये ठिकाने पर चला जाता और मछियारा भी उसके पीछे-पीछे वहीं पहुंच जाता।

बूढ़े मात्वेई ने कहा, "सरदियों में ऊदबिलाव के साथ कहीं ज़्यादा मज़ा आता है। आपको लगता है कि आप ताइगा में नदी के किनारे अकेले नहीं हैं, बल्कि पास ही एक और मछियारा भी है।"

अभी वह यह कह ही रहे थे कि विलो की एक टहनी पर नीले-हरे रंग की एक चिड़िया नज़र आई।

"अहा, यह है मेरी मनपसंद चिड़िया!" बूढ़े मात्वेई ने नन्ही कौड़िल्ली को स्नेहपूर्ण आंखों से देखते हुए कहा। "हम इन्हें नीली गौरैया कहते हैं। ये वसंत में यहां आती हैं, अपनी चोंचों से खड़े नदी-तट में छेद बना लेती हैं और उनमें अपने बच्चों को पालती-पोसती हैं। अपने बच्चों को ये छोटी मछलियां खिलाती हैं। हम असल में एक ही डाल के आम हैं – दोनों ईमानदार मछियारे हैं।"

कौड़िल्ली तिरछी नज़र से नदी की तरफ़ देखती रही और अपनी गर्दन को ऐंठती रही, जैसे लंबे कलफ़दार कालर के कारण असुविधा का अनुभव कर रही हो। मिनट भर बाद ही हलकी सी छपछपाहट हुई – कौड़िल्ली ने गोता मार दिया था। नदी की सतह पर बने चक्कर जब फैलकर ख़त्म हो गये, तो हमने देखा कि कौड़िल्ली अपने हरे पंखों के सहारे बड़ी कुशलता के साथ तैर रही है। तीन सेकंड बाद वह एक नन्ही मछली को चोंच में दबाये पंख फड़फड़ाती ऊपर उड़ गई। पेड़ की एक टहनी पर बैठकर उसने मछली को उस पर पटककर

सुन्न कर दिया। फिर मछली को चोंच में मज़बूती से पकड़कर कौड़िल्ली टेढ़ी-मेढ़ी नदी के ऊपर से तेज़ी से गुज़रती किनारे में बने अपने घोंसले में जा पहुंची।

कुछ ही देर बाद वह उसी डाल पर अपने अनुकूल स्थान पर आ बैठी।

बूढ़े मात्वेई ने कहा, "जब कभी बहुत अकेलापन महसूस होता है, तो मैं पास ही किनारे में इसके बैठने के लिए एक टहनी गाड़ देता हूं। लेकिन इसके लिए यह जानना ज़रूरी है कि किस तरह की टहनी लगाई जाये। नहीं तो चाहे आप मछली पकड़ने की अच्छी-से-अच्छी जगह भी टहनी गाड़ दें, फिर भी हो सकता है कि आपकी यह नीले परोंवाली दोस्त भूखी ही रह जाये। अगर आपकी टहनी ज़्यादा पतली हुई, तो ऐसा ही होगा। बात यह है कि पतली टहनी में लचक ज़्यादा होती है, जिसकी वजह से कौड़िल्ली अपने लक्ष्य पर से आगे निकल जाती है। और ज़्यादा मोटी टहनी भी ठीक नहीं रहती, क्योंकि उसमें लचक बिलकुल नहीं होती। इन नीले परिंदों के लिए बिलकुल सही मात्रा में लचक होनी चाहिए, और लचक ठीक न हो, तो मछली इनके पल्ले नहीं पड़ती। हर चीज़ बिलकुल सही मिक़दार में होनी चाहिए। और मैं चूरा डाल-डालकर इनके लिए छोटी मछलियों को आकृष्ट करता हूं।"

इससे यह बात मेरी समझ में आ गई कि मछली की घात में कौड़िल्ली हमेशा एक ही टहनी पर क्यों बैठती है।

"जी हां, मुझे तो ये नीले परिंदे ही पसंद हैं," बूढ़े ने फिर कहा। "ये ईमानदार जानवर हैं, न कि इन धारियोंवाली गिलहरियों की तरह चोर। ये गिलहरियां भी हमेशा खाने लायक किसी न किसी चीज़ को चुराने और उसे ज़मीन में अपने बिलों में छुपाने की घात में ही रहती हैं। सुनिये, किस तरह ये 'त्तुम-त्तुम' कर रही हैं। जानते हैं, ये क्यों इस तरह शोर कर रही हैं? सूखी रोटी के इस थैले को देखिये ज़रा, जिसे मैंने उस टहनी पर लटका रखा है। एक-दो दिन पहले की बात है, मैंने थैले को तंबू में ही रहने दिया। गिलहरियों ने उसे ढूंढ़ लिया और अपने दांतों से उसमें छेद कर दिया। उन्होंने पंजों से अपने मुंहों में रोटी का चूरा ठूंस लिया और गाल फुलाये लगीं अपने बिलों की तरफ़ दौड़ने। अरे, साहब, थैला ऊपर तक भरा हुआ था और जब मैं लौटकर आया, तो वह इतना ख़ाली हो चुका था कि हिलने से रोटी की खड़खड़ाहट सुनी जा सकती थी। इन धारियोंवाली उचक्कियों ने लूट लिया था मुझे! अभी भी मेरे थैले के नीचे कम-से-कम तीस गिलहरियां होंगी। वे उस तक पहुंच नहीं सकतीं, मगर उनके मुंहों में लार ज़रूर आ रही होगी।"

बूढ़े मात्वेई मिनट-दो-मिनट खामोश बैठे गिलहरियों के "त्तुम-त्तुम" शोर को सुनते रहे और फिर बोले, "उनमें से कई गिलहरियां पहले काफ़ी देर थैले के नीचे ही उछलती रहीं और फिर यह कहिये कि ख़ाली मुंह ही भाग गईं और इसीलिए उन्होंने इस शोर से आसमान को सर पर उठा रखा है। उनको पसंद न आनेवाली कोई भी बात हो जाये, तो वे यही करती हैं। चाहे बिजली तड़के, गोली चले—उनको अच्छी न लगनेवाली कोई भी बात हो

जाये, तो वे इसी तरह रिरियाना शुरू कर देती हैं – उनके बाल उलझे होते हैं, वे पेड़ों के ठूंठों पर सिरों को पंजों में पकड़कर बैठ जाती हैं और दुखभरी आवाज़ में चिल्लाने लगती हैं 'तुम-तुम'! आज वे इसलिए रो रही हैं कि उन्हें आसानी से और खाना नहीं मिल रहा है। अब उन्हें उसकी तलाश में ताइगा जाना होगा।"

क्षण भर चुप रहने के बाद उन्होंने मेरे साथियों से पूछा, "ख़ैर, आप लोग तो वैज्ञानिक हैं, मगर क्या आप मेरे इस सवाल का जवाब दे सकते हैं – ८० किलो भारी एक पत्थर को कैसे खींचकर नाव में डालें कि जिससे नाव पानी में ऐन वहां रह सके, जहां स्टरलेटों के झुंड हैं?"

नौजवानों के जवाब सुनकर वह हंस पड़े और बोले, "अगर आपने ऐसा किया, तो आप सीधे पेंदे में जा बैठेंगे।"

फिर वह मुझसे बोले, "क्या आप यह कर सकते हैं? आप तो हर बात जानते हैं।"

"मेरे ख़याल से मैं कर सकता हूं," मैंने जवाब दिया। "वैसे मैंने पहले कभी यह किया नहीं है। पानी में पत्थर बहुत भारी नहीं होता। ज़ोर से खींचने से पत्थर उछल पड़ेगा और सीधे पानी के बाहर निकल आयेगा। आपको सिर्फ़ यही करना होगा कि उसे जल्दी से नाव में खींच लें और फिर नाव को प्रवाह में सीधा करने के लिए चप्पुओं को संभाल लें।"

बूढ़े मात्वेई ने हैरानी से मेरी तरफ़ देखा और फिर व्यग्रतापूर्वक पूछा, "किसने आपको यह बताया?"

"आर्कीमिदीज़ ने," मैंने जवाब दिया।

"वह कहां रहता है?"

"वह मर चुका है।"

"उसने यह बात आप ही को बताई या हर किसी को बता दी है? मेरे घर में तो यह राज़ मेरे परदादा के ज़माने से चला आ रहा है। मेरे गांव में मेरे अलावा और कोई आदमी कान नदी में से स्टरलेट नहीं पकड़ सकता।"

मैंने उनसे कहा कि आर्कीमिदीज़ ने यह बात (विशिष्ट भार का अध्याय) अपनी भौतिकी की पाठ्यपुस्तक में लिखी थी और मेरे ख़याल से यह किताब उनके गांव में नहीं पहुंची।

"जब आप कान नदी से येनिसेई नदी में पहुंचें, तो मेहरबानी करके वहां के लोगों को आर्कीमिदीज़ के बारे में मत बताइयेगा, नहीं तो थोड़े ही दिनों में नदी में स्टरलेट नहीं बच रहेंगे। उसे किसने यह बात सिखाई?"

"उसने ख़ुद ही जान ली," मैंने जवाब दिया।

बुढ़ऊ काफ़ी देर अलाव के आगे बैठे हैरानी के साथ यही कहते रहे, "वाह, कैसा तेज़ दिमाग़ था! भला, उसका नाम क्या था? फिर बताइये!"

"आर्कीमिदीज़," नौजवानों ने उन्हें याद दिलाया।

जब हम लोग उनसे विदा लेने लगे, तो बूढ़े मात्वेई उदास हो गये।

"यह पहला मौक़ा है कि मैंने शहरी लोगों को अपनी इच्छा से ताइगा आते देखा है। अब आपके बिना मैं अकेलापन महसूस करूंगा। जंगल में मैंने पहले कभी अकेलापन महसूस नहीं किया था।"

जी हां, और अगले ही दिन वह हमसे मिलने के लिए आये।

क्या जानवरों के दिमाग़ होते हैं?

भूरे भेड़िये, चालाक लोमड़ी और झबरे भालू के क़िस्से भला कौन नहीं जानता! बचपन में सुनी इन कहानियों का असर इतना ज्यादा होता है कि कई लोग यही समझते रहते हैं कि जानवरों के भी लगभग मनुष्यों जैसे ही दिमाग़ होते हैं। हमसे कभी-कभी पूछा जाता है, "क्या जानवरों के दिमाग़ होते हैं?" इस सवाल का सही जवाब क्या है? निस्संदेह, जानवरों के दिमाग़ मनुष्य के दिमाग़ से कहीं घटिया होते हैं। वे सोचते नहीं, उनकी सारी प्रतिक्रियाएं प्राकृतिक वातावरण में उस जीवन की सभी जटिलताओं द्वारा पूर्वानुकूलित होती हैं, जिसके लिए जानवरों ने युगों लंबी अवधि में अपने आपको अनुकूलित किया है।

एक बार यह देखने के लिए कि हमारे जानवर कितने बुद्धिमान हैं, हमने मास्को के चिड़ियाघर में निम्नलिखित प्रयोग किया। अफ़्रीका से हाल ही में आये कई बेइसा मृगों को एक बड़े बाड़े में रख दिया गया, जिसके चारों तरफ़ लोहे की रेलिंग लगी हुई थी। बाड़े के बीच में भी आरपार ऐसी ही रेलिंग लगी हुई थी और हमारे बंदी उसके एक हिस्से में रहा करते थे। शुरू-शुरू में उन्होंने रेलिंग में से ज़बरदस्ती निकलने की नाकाम कोशिशें कीं। फिर, धीरे-धीरे यह बात उनकी समझ में बैठ गई कि रेलिंग के
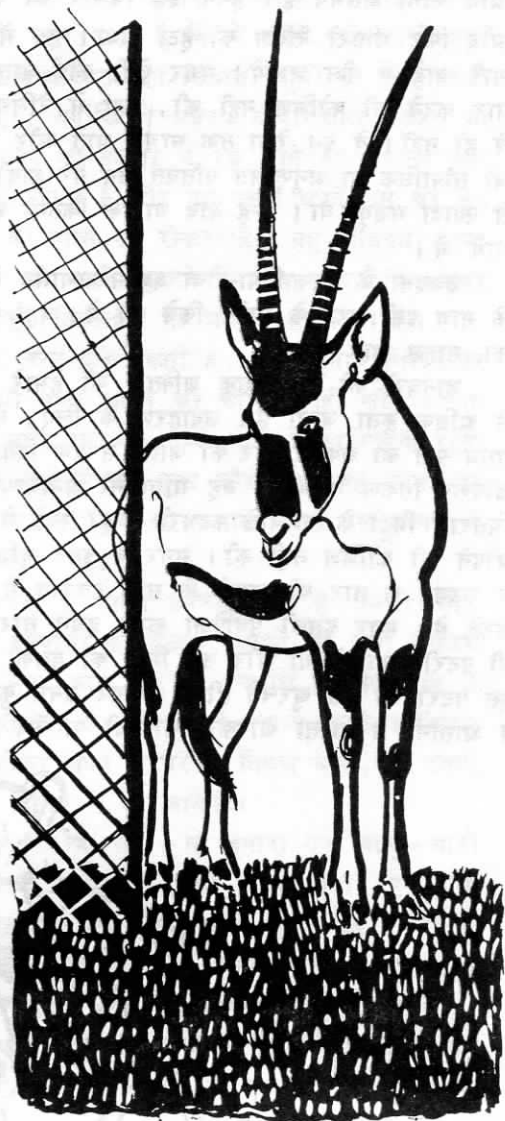
आगे जाना असंभव है। हमने इस विचार को उनके दिमाग़ों में भली भांति बैठ जाने दिया और फिर भीतरी रेलिंग को हटा दिया। हम में से कुछ लोगों को यक़ीन था कि अब मृग सारे बाड़े में फैल जायेंगे। मगर ऐसी कोई बात नहीं हुई – किसी भी मृग ने उस रेखा को पार करने की कोशिश नहीं की, जहां से रेलिंग अलग कर दी गई थी – वे इतने बुद्धिमान थे ही नहीं। वे इस रेखा तक भागते आते और उसके पहले ही ठहर जाते। पिछले हफ़्तों में जो सौपाधिक या अनुकूलित प्रतिवर्त उन पर हावी हो गया था, वह किसी भी तरह के जंगले से ज़्यादा मज़बूत था। उन्हें याद था कि कितनी भी कोशिश करके भी वे रेलिंग से नहीं गुज़र पाये थे।

उक्रइना के अस्कानिया-नोवा पशु-संरक्षणालय में भी भूरे चिकारों, शुतुरमुर्गों और लामाओं के साथ इसी तरह के प्रयोग किये गये थे। वहां भी किसी भी जानवर ने रेखा को पार करने का साहस नहीं किया।

जानवरों की "मानसिक शक्ति" को हमारे पशुपालन फ़ार्मों तक में अकसर वास्तविकता से अधिक कूता जाता है। उदाहरण के लिए, सेबलों और चितरालों के लिए कटघरे बनाते समय फ़र्श को अकसर तार की जाली से ढंक दिया जाता है, ताकि ये जानवर ज़मींदोज़ रास्ता खोदकर निकल न भागें। यह सावधानी अनावश्यक है। मास्को के चिड़ियाघर में सेबल और चितराले मिट्टी के फ़र्शवाले कटघरों में ही रहते थे और उनमें से किसी ने भी कभी भी रास्ता खोदने की कोशिश नहीं की। मगर वे इतने बुद्धिमान थे भी नहीं कि यह काम कर पाते। वे कटघरे के तार की जाली के साथ टकराते थे और फिर उसी के पास खोदने की कोशिश करते थे। मगर इसकी पूर्वपेक्षा करके हमने तार की जाली के पेंदे के साथ-साथ एक पतली सी पटरी लगा दी थी और उसे मिट्टी की हलकी परत से ढंक दिया था। सेबल और चितराले इस पटरी को बस खुरचते ही थे। अगर उनमें कुछ सेंटीमीटर दूर खोदने की बुद्धि होती, तो वे आसानी से रास्ता खोदकर आज़ादी पा सकते थे।

शेर और बाघ भी कोई ज़्यादा "बुद्धिमान" नहीं होते। हमारे चिड़ियाघर में उन्हें अकसर प्लाइवुड की बनी इतनी पतली दीवारों से अलग रखा जाता है कि वे उनके शक्तिशाली पंजों की मामूली-सी चोट से भी टूट सकती हैं। मगर साधारणतः इन विशाल पशुओं को ऐसी पतली बाड़ें तोड़ डालने का ख़याल आता तक नहीं, क्योंकि वे मज़बूत दीवारोंवाले मकानों या कटघरों में ही बड़े हुए थे। जब हम किसी जानवर को कटघरे में रखे जाने का अभ्यस्त बना देते हैं, तो यह उसकी आदत में शामिल हो जाता है और यह उसके अपने उस घर से, जिसका वह आदी हो चुका है, निकल भागने के प्रयास को रोकता है। यह प्रतिवर्त इतना शक्तिशाली हो जाता है कि कभी-कभी जानवर को उसके कटघरे के खुले दरवाज़े से—अगर वह उससे पहले कभी नहीं निकला है, तो—बाहर निकालना भी असंभव हो जाता है।

हर कोई जानता है कि चीतल बहुत अच्छी तरह कूद सकता है, मगर हमारे चिड़ियाघर के चीतलों ने अपने बाड़े की नीची बाड़ को भी कभी फांदने की कोशिश नहीं की। कोपेत-दाग़ी भेड़ा भी बिलकुल यही करता था। कई साल तक वह अपने बाड़े में शांतिपूर्वक रहता रहा, मगर एक दिन एक कुत्ता अचानक उसके बाड़े में आ घुसा और इससे वह इतना डर गया कि अपने बाड़े को शेष पार्क से अलग करनेवाली बाड़ को फलांग गया। इस मामले में अंतर्जात प्रतिवर्त अर्जित प्रतिवर्त पर हावी हो गया था।

भूरे भालू वानर के सिवा बाक़ी सभी जानवरों से ज़्यादा उपक्रमी होते हैं। किसी सिंह, बाघ या तेंदुए ने अपने कटघरों के फिसलनेवाले दरवाज़ों को उठाकर भागने की कभी कोशिश नहीं की, यद्यपि यह काम काफ़ी सरल है। मगर भालू जैसे ही रखवाले को इस तरह के दरवाज़े को उठाते देखता है, वह उसकी नक़ल करता है। फिर भी, भालू इतने होशियार नहीं होते कि एक-दूसरे की कमर पर खड़े होकर अपने कटघरे से निकल जायें, जो इतनी आसान बात है कि तीन साल के बच्चे के भी दिमाग़ में आ जायेगी।

शुरू वसंत के एक दिन की बात है। बरफ़ पिघलने लगी, तो हमारा एक भालू—भारी भरकम पहलवान—अचानक अपने शक्तिशाली पंजों से बर्फ़ के गोले बनाने लगा। इन भौंडे गोलों का उसने खाई में ढेर लगा दिया और उन पर खड़े होकर अपने अगले पंजे दीवार के ऊपर तक फैला दिये। लगता था कि वह भागने पर तुला हुआ है। मामला इतना संगीन लगने लगा कि कोई चिल्ला पड़ा, "बम फेंको उस पर!"

रखवाले लपककर पासवाले गोदाम में गये और कुछ ही मिनटों में बम ले आये। ये बम ख़ास तरह के पटाखे होते हैं, जो फटते तो बड़े ज़ोर की आवाज़ के साथ हैं, पर लोगों या जानवरों को कोई नुक़सान नहीं पहुंचाते।

बम पहलवान के बनाये बरफ़ के पहाड़ पर जाकर फटे और उन्होंने उसे डरा दिया। उसके बाद बहुत समय तक पहलवान ने उस भयानक जगह के पास तक जाने की हिम्मत नहीं की और भागने की कोई और कोशिश नहीं की। लेकिन थोड़े ही दिन बाद पहलवान ने एक

बार फिर चिड़ियाघर के कर्मचारियों को अचंभे में डाल दिया। एक हरी टहनी उसके मन को भा गई, जिसकी पत्तियां हवा में फरफराया करती थीं। पहलवान ने ज़मीन पर खड़े-खड़े उस तक पहुंचने की नाकाम कोशिशें कीं। फिर वह एक बड़े पत्थर को धकेलकर पेड़ के नीचे ले आया, उस पर खड़ा हुआ और उस मोटी डाल को उसने बड़ी आसानी से उखाड़ लिया, जिस पर उसकी मनपसंद टहनी लगी हुई थी। यह एक ऐसी बात थी, जो और कोई भालू नहीं कर सकता था।

त्बिलीसी के चिड़ियाघर में एक अजीब वाक़िआ हुआ। पालतू भालुओं के एक दल का रखवाला एक दिन बाड़े के दरवाज़े की चाबी भूल आया। उसे लाने के लिए दफ़्तर वापस जाने के बजाय वह बाड़े की पत्थर की दीवार पर चढ़कर भीतर उतर आया। यह कोई मुश्किल काम नहीं था, क्योंकि दीवार में कई बड़ी-बड़ी दरारें थीं।

भालुओं ने उसकी दी रोटी खा ली और उसे बाड़े की सफ़ाई करते देखते रहे। सफ़ाई ख़त्म करने के बाद जब रखवाला उसी रास्ते से चढ़कर बाहर चला, तो भालू भी उसी के पीछे-पीछे चल दिये। चारों भालुओं को पकड़ना और उन्हें बाड़े में वापस रखना काफ़ी मुश्किल साबित हुआ। दीवार की दरारों को सीमेंट से भरना पड़ा।

इन सब बातों से यही साबित होता है कि भालुओं की अनुकरण-क्षमता ख़ासी होती है।
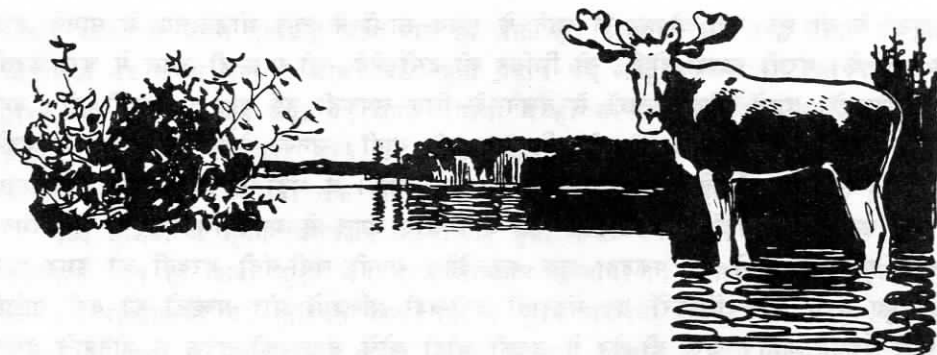
हवाई जोंकों से अद्भुत लड़ाई

जून की एक शाम की बात है। दिन भर ख़ूब गरमी पड़ी थी और अब गांव का रेवड़ वापस आ रहा था। गायें अपने सिर इधर-उधर चलाकर और दुमें फटकारकर उन मच्छरों और घुड़मक्खियों को भगाने की कोशिश कर रही थीं, जो जंगल से उनका पीछा कर रही थीं। चरवाहा अपने जानवरों को आगे रखने के अलावा और कुछ नहीं कर सकता था – वे दर्द और ग़ुस्से के मारे पागल हो रहे थे। इन संत्रस्त प्राणियों को देख मुझे जंगली जानवरों से अपनी भेंटों की याद आ गई। ऐसा लगेगा कि ख़ून चूसनेवाले परजीवियों के कारण, जो केवल तेज़ दर्द ही नहीं देते हैं, बल्कि संक्रामक रोगों के वाहक भी होते हैं, उनका जीवन असह्य हो जाता होगा। मगर बात ऐसी नहीं है।

मुझे याद है कि आमू दरिया के मुहाने में अपनी यात्राओं के समय एक बार मैंने एक विशालकाय जंगली सूअर देखा था। मैं घने सरकंडों से होकर आगे जा रहा था और साफ़ ज़मीन के एक ख़ासे बड़े टुकड़े के छोर पर पहुंच गया था और वहीं, मुझसे थोड़ी ही दूरी पर एक सूअर एकदम निश्चल खड़ा हुआ दिखाई दिया। मैंने अपना शक्तिशाली दूरबीन अपनी आंखों से लगाया और देखा कि वह आंखें मूंदे ऊंघ रहा है, जबकि कस्तूरा आदि कुछ जलकुक्कुट तथा कीड़े-मकोड़ों पर गुज़र करनेवाले अन्य पक्षी उसकी कमर पर उछल-कूद और फड़फड़ा रहे थे।

वे घुड़मक्खियों और बड़े-बड़े मच्छरों को सूअर की खाल के मर्म-स्थलों पर बैठने का मौक़ा दिये बिना बड़ी सफ़ाई के साथ चट कर रहे थे। अपनी चोंचों को कीड़ों से भर-भरकर पक्षी तेज़ी के साथ अपने पेटू बच्चों के पास उड़ जाते और फिर तुरंत लौट आते थे। अपने कष्टदाताओं से इस तरह अपने पंखदार मित्रों से संरक्षित सूअर ढलते सूरज की गरम किरणों का मज़ा ले रहा था। इस मामले में पारस्परिक लाभ प्रत्यक्ष है।

लोसीनोओस्त्रोव्स्काया में मास्को खाल तथा समूर संस्थान के वन-शिविर में भी मैंने एक ऐसा ही दृश्य देखा था, जहां तृतीय वर्ष के छात्र व्यावहारिक प्रशिक्षण पा रहे थे। बतख़ों

के चूज़ों के दो झुंड वहां दोपहर के खाने के समय छात्रों के खुले भोजनालय के सामने सदा जमे रहते थे। गरमी ज़्यादा होती, तो शिविर की दसों भेड़ें, जो पास ही जंगल में चरा करती थीं, मक्खियों, डांसों ग्रौर मच्छरों से बचने के लिए लपकती हुई वहां ग्रा जाती थीं। वहां ग्राकर वे ज़मीन पर गिर जातीं ग्रौर निश्चल पड़ी रहतीं। उनको देखते ही बतख़ों के बच्चे ग्रपने नन्हे-नन्हे पंख फैलाते ग्रौर उनकी तरफ़ लपक पड़ते। वे भेड़ों के सिरों ग्रौर उनके सांस के साथ उठते-गिरते धड़ों पर उछलकर चढ़ जाते ग्रौर जंगल से ग्रपने शिकारों के पीछे भिन-भिनाती ग्राती मक्खियों को पकड़ना शुरू कर देते। ग्रपनी लंबी-लंबी गरदनों को इधर-उधर मोड़ते हुए बच्चे ग्रपने शिकारों पर मंडराती बड़ी-बड़ी मक्खियों ग्रौर मच्छरों को बड़ी सफ़ाई के साथ पकड़ते जाते। ज़रा ही देर में उनकी चौड़ी चोंचें जंगल की तरफ़ से होनेवाले हमले का ख़ात्मा कर देतीं ग्रौर उसके बाद बच्चे फिर भोजनालय में दिलचस्पी लेने लगते।

इसमें सबसे ग्रचरज की बात यह थी कि भेड़ों ग्रौर बतख़ों के बच्चों में यह नया प्रतिवर्त कितनी तेज़ी के साथ ग्रवस्थापित हो जाता था। लगता था जैसे उन्होंने दोनों पक्षों के पारस्परिक लाभ का शब्दहीन समझौता संपन्न कर लिया हो। ग्राम तौर पर बत्तखें खुरदार जानवरों की कमर पर नहीं चढ़तीं, जैसा कि मैना ग्रौर कौए करते हैं।

युग-युग के दौरान एल्कों ने रक्त पिपासु कीटों के विरुद्ध एक ग्रद्भुत रक्षा साधन विक-सित कर लिया है। सरदियों में उनकी स्वेद-ग्रंथियां, जो पसीना पैदा करती हैं, काम करना बंद कर देती हैं। सूखी खाल शरीर की गरमी को बचाये रखने में सहायता देती है। उत्तरी बारहसिंगों या रेनडियरों को न सरदियों में पसीना ग्राता है, न गरमियों में। ये दोनों ही जानवर ज़्यादा न गरमा जाने के लिए भागते-भागते ग्रपने मुंह खोल देते हैं ग्रौर जीभों को लटकाकर बर्फ़ को चाटते जाते हैं ग्रौर जल्दी-जल्दी सांस लेने लगते हैं। गरमियों में रेनडियर खुले पठारों पर चरते हैं, जहां हवा रक्तपिपासु मक्खियों को उड़ा ले जाती है। एल्क, जो जंगलों में ही रहते हैं, इन परजीवियों से ग्रपनी स्वेद-ग्रंथियों की सहायता से छुटकारा पाते हैं, जो वासंतिक निर्मोचन ऋतु में काम करना शुरू कर देती हैं। गरमियों भर एल्कों के बाल कत्थई रंग के तेलिया पसीने से तर होते रहते हैं, जो मामूली भुनगों तो क्या, मच्छरों तथा घुड़मक्खियों तक को भगा देता है। ये ख़ूनचूस कीड़े इस पसीने के कारण दम घुटने से मर जाते हैं, जो उनके सांस लेने के छिद्रों को बंद कर देता है। मगर कुछ ग्ररक्षित बालहीन स्थल बच रहते हैं – ग्रगली टांगों के टखने, पिछली टांगों के घुटने ग्रौर कान। ये जगहें परजीवियों के कारण ग्रकसर ख़ून बहते घावों में बदल जाती हैं। ग्रपने को बचाने के लिए ये जानवर घंटों घुटने तक पानी में खड़े रहते हैं ग्रौर बीच-बीच में ग्रपने सिरों को उसमें डुबाते ग्रौर कानों को फड़फड़ाते रहते हैं।

परजीवी मुसीबत पैदा कर देते हैं। एक बार किसी ग्रज्ञात स्थान से ग्रानेवाला बवंडर ग्रपने साथ ग्रस्कानिया-नोवा पशु-संरक्षणालय में छोटे-छोटे मच्छरों के समूह को ले ग्राया,

जिनके काटने से जलन होती है और घाव हो जाते हैं। दो-तीन दिन तक लोगों को अपनी खिड़कियां बंद करके घरों के भीतर बैठे रहना पड़ा। कई नन्हे लकलक इन ख़तरनाक मच्छरों द्वारा, जो हर कहीं घुस जाते थे, अपने घोंसलों में ही मारे गये। बढ़िया-से-बढ़िया मच्छरदानियां भी उनके आगे बेकार थीं। इन मच्छरों के आख़िरकार वहां से ग़ायब होने तक कई जानवरों और वयस्क पक्षियों तक को भयानक तक़लीफ़ झेलनी पड़ी।

मध्य एशिया में भुनगे विशेषकर तक़लीफ़देह हुआ करते थे, जहां उनके दंश से खाल पर ख़तरनाक घाव हो जाया करते थे। परजीवीविज्ञान संस्थान ने, जिसके प्रधान अकादमीशियन ये० न० पाव्लोव्स्की थे, निश्चित किया कि ये भुनगे सरदियां सैंडवर्ट तथा चूहे जैसे अन्य कृन्तकों के बिलों में गुज़ारते हैं। काफ़ी प्रयोगों के बाद संस्थान ने पता चलाया कि वसंत में ये मच्छर अपने शीतकालीन आवासों से बहुत दूर-दूर उड़कर चले जाते हैं और शहरों तक में जा बसते हैं। इसके फलस्वरूप एक व्यापक अभियान शुरू किया गया, जिसके दौरान सभी सैंडवर्ट ख़त्म कर दिये गये और उनके बिलों को नष्ट कर दिया गया। इस तरह मनुष्य के युगों पुराने शत्रुओं पर विजय प्राप्त की गई।

भालुओं का परिवार

नर भालू अपने नवजात बच्चों को फूटी आंख भी नहीं देख सकते। वसंत में मादा भालू को जंगल में किसी ऐसी जगह जाकर छिपना पड़ता है, जहां परिवार के प्रमुख से उसकी मुलाक़ात न हो, और पतझड़ में वह अपने बच्चों के साथ सरदियां काटने के लिए कोई अलग ठिकाना ढूंढ़ लेती है। हां, बता दें, भालू हर दो साल में एक बार जोड़ा बनाते और बच्चे देते हैं।

कुछ वर्ष हुए, हमने एक भालू पिता को अपने बच्चों का आदी बनाने की कोशिश की थी। मास्को के चिड़ियाघर के भारी-भरकम भालू पहलवान और मादा भालू रोनी को एक ही बाड़े में रख दिया गया। सरदियों में रोनी ने तीन बच्चों को जन्म दिया। पहलवान उनकी तरफ़ तिरछी नज़र से देखता और अकसर उन्हें अपने भारी पंजे के नीचे लाने की कोशिश करता। मगर सतर्क मां उसे पास न फटकने देती। जब कभी भी पिता पास आता, रोनी उसके और अंधे बच्चों के बीच आ जाती। पहलवान डील-डौल में रोनी से दो गुना था और उससे कहीं अधिक ताक़तवार था। मगर चेत जाने पर रोनी साक्षात चंडी ही बन जाती थी। वह ऐसे जमकर मुक़ाबला करती, ऐसे ज़बरदस्त घूंसे बरसाती कि पहलवान हार जाता। अपनी घरवाली के मुक्कों से बचता बेचारा पहलवान अपने अगले पंजों से अपरु सिर को छिपाता

पिछले पैरों के बल पीछे हट जाता। एक बार तो वह खाई में ही गिर पड़ा।

ये पारिवारिक झगड़े तब तक चलते रहे कि पहलवान ने हार न मान ली। वह रोनी से इस क़दर आतंकित था कि अगर कभी बच्चे अपनी मांद के बाहर निकल आते और अपने बाप की तरफ़ आने लगते, तो वह डर के मारे उनसे दूर भागता और सिर को पंजों से ढंके डरता-डरता पीछे रोनी की तरफ़ देखता जाता।

हमने समझा कि पहलवान ने परिवार में अपनी इस नई स्थिति को मंज़ूर कर लिया है, मगर हम ग़लती पर थे।

जिस बाड़े में पांच भालुओं का यह परिवार रहता था, उसके बीच में पेड़ का एक बड़ा, ऊंचा ठूंठ था। एक बार हुआ यह कि एक बच्चा उस ठूंठ पर चढ़ गया और बैठकर धूप खाने लगा। इधर पहलवान ने देखा कि रोनी झपकी ले रही है। बस, वह चुपके से ठूंठ के पास गया और उस पर ऐसा ज़ोर का हाथ मारा कि चीख़ता हुआ बच्चा हवा में उछल गया। उसकी चीख़ सुनकर रोनी तुरंत जाग गई और उसने पहलवान की कसकर मरम्मत की। पहलवान बेचारा एक कोने में जा दुबका और अपमान का असर ख़त्म करने के लिए आंख मूंदकर सो गया।

परिवार में कुछ दिन शांति बनी रही। रोनी पहले की तरह चौकस नहीं थी। एक सुहावनी सुबह उसकी आंख लग गई। पहलवान ने देखा कि एक बच्चे ने खाई के किनारे जाकर अपने अगले पंजे पानी में डुबा दिये हैं। पहलवान खाई में उतरा और चुपके से पानी को छपछपाते बच्चे के पास जा पहुंचा। फिर बाप ने अचानक बच्चे की गरदन को अपने दांतों में दबाया और उसे पानी में झोंक दिया। बच्चे ने चिल्लाने के लिए अपना मुंह खोला, पर चिल्ला न सका—पानी उसका दम घोंट रहा था। पहलवान भी पानी में अब और ज़्यादा न रह सकता था। उसने सांस लेने को अपना सिर उठाया और उसी क्षण उसके शिकार ने, जो अभी भी उसके दांतों में लटका हुआ था, ऐसी मर्मभेदी चीख़ मारी कि वह हमारे चिड़ियाघर के "पशु द्वीप" के कोने-कोने में गूंज गई। मां उछली और सीधे अपने हिंसालु घरवाले पर झपटी।

देखने की चीज़ थी वह! चंडीरूपा मादा पहलवान पर जा टूटी और उसकी वह गत बनाई कि बेचारा अपने सिर को छिपाये पीछे हटता-हटता खाई के आख़िरी सिरे पर पहुंच गया। आख़िर जब रोनी ने उसे बख़्शा, तो पहलवान घंटे भर से ज़्यादा पानी में ही रहा। अपनी घरवाली के डर के मारे, जो गुस्से में भरी खाई के किनारे ही इधर-उधर घूम रही थी, उसकी किनारे पर चढ़ने की हिम्मत नहीं हो रही थी।

उस दिन के बाद परिवार में क़ानून और व्यवस्था की अच्छी तरह से स्थापना हो गई। रोनी अपने बच्चों के पालन-पोषण में रम गई और उनके बाप की तरफ़ उसने ज़रा भी ध्यान देना बंद कर दिया।

पहलवान के नये बाल निकल आये और उसके बाद अपने बच्चों में उसकी दिलचस्पी पूरी तरह से ख़त्म हो गई। ज़्यादातर वह अपने पंजे फैलाये पीठ के बल शांति से सोता ही रहता।

सरदियां आ गईं। भालुओं ने अपने लिए ज़मीन में गहरे गड्ढे खोद लिये और ज़्यादातर समय वे वहीं ऊंघते रहते। रोनी अपने बच्चों के साथ ही सोती थी – पहलवान की मांद बाड़े के दूसरे कोने में थी। मौसम में कुछ गरमी होती, तो बच्चे मांद से बाहर बर्फ़ पर खेलने के लिए निकल आते। कभी-कभी वे साहसपूर्वक अपने बाप के पास तक चले जाते और तब पहलवान उनका अपनी मां की मांद को लौटने का रास्ता काटने की कोशिश करता। सरदियों में रोनी की मातृवृत्ति इतनी तेज़ नहीं रही थी और वह अपने बच्चों की रक्षा के लिए तभी आती थी कि जब सभी उसकी मांद में ही होते थे। मगर बच्चे भी अब इतने बड़े हो चुके थे कि अपनी परवाह आप कर सकते थे। वे अपना पीछा करनेवाले की पकड़ से आसानी से निकल जाते थे। सिर्फ़ एक ही बार पहलवान उनमें से एक को पकड़ पाया। पहलवान ने उसे, जो अब ३० किलो से ज़्यादा का हो चुका था, ऐसी धौल जमाई कि उसके पैर ज़मीन से उखड़ गये और वह कुछ मीटर हवा में उड़कर फिर ज़मीन पर जा गिरा।

वसंत में परिवार में कोई गंभीर विवाद नहीं हुआ। बच्चे ज़्यादा हिम्मतवर बन गये थे और अपनी बख़ूबी हिफ़ाज़त कर लेते थे।

एक बार चिड़ियाघर के पार्क में होकर जाते समय मुझे भालुओं के बाड़े के पास खड़ी भीड़ का बड़ा आनंद भरा शोर सुनाई दिया। पता लगा कि भालुओं ने अच्छा ख़ासा तमाशा दिखा दिया था। पहलवान खाई में था और उसका एक बच्चा – वही, जिसे कुछ पहले उसने ऐसी धौल जमायी थी कि वह दूर जा गिरा था – ऊपर चौकस खड़ा उसे देख रहा था। पहलवान ने खाई से निकलकर ऊपर आने की कोशिश में पत्थर की दीवार की एक दरार में अपने पंजे टिकाये। उसी क्षण वह बच्चा लपककर उसके पास आया, उसे चट-चट-चट तीन करारे तमाचे रसीद किये और अपनी मां के पास भाग गया।

व्यायाम आवश्यक है

मास्को चिड़ियाघर के कुछ निवासियों—काले तीतरों, नन्हे ख़रगोशों और गानेवाले पक्षियों—ने अपना बचपन पिंजरों में बैठे-बैठे ही बिताया। उनके विकास के दौरान हमने उन्हें सतत देखभाल में रखा और चिंता की हमें कोई बात नज़र नहीं आई। वे बिलकुल सामान्य प्राणी लगते थे, उन्हें बढ़िया-से-बढ़िया ख़ुराक मिलती थी—बस एक ही बात ऐसी थी, जिसमें उनकी ज़िंदगी अपने वनवासी भाई-बहनों से भिन्न थी और यह बात थी व्यायाम का अभाव, क्योंकि उनके पिंजरे बहुत छोटे थे।

धीरे-धीरे ये पक्षी और पशु बड़े हो गये और हमारे लिए अपना प्रयोग पूरा करना संभव हो गया। हम यह जानना चाहते थे कि तंग जगह बाल पशु के विकास पर क्या प्रभाव डालती है। हमने शुरूआत एक ख़रगोश से की और जिस छोटे-से पिंजरे में वह बड़ा हुआ था, उससे निकालकर उसे एक बड़े मैदान में छोड़ दिया। नन्हा-सा ख़रगोश अपनी पिछली टांगों और कूल्हे के बल बैठा कभी इधर देखता था, तो कभी उधर। सूरज चमक रहा था। मैदान में घास और रंगीन फूलों का क़ालीन बिछा हुआ था। इतनी लंबी-चौड़ी खुली जगह को देखकर खरहा चकित हो गया। फिर वह ऊपर उछला। एक बार फिर उसने ऊपर छलांग लगाई। लगता था, जैसे हर मिनट के साथ वह ताक़त और फुर्ती इकट्ठी कर रहा है। एक बार फिर उसने एक लंबी छलांग के लिए अपनी पिछली टांगों को तनाया, उछला... और ढेर-सा होकर गिर पड़ा। हम लपककर उसके पास गये, मगर वह मर चुका था। शव परीक्षा से पता चला कि

उसकी मृत्यु आकस्मिक हृद-पक्षाघात से हुई थी।

एक और छोटे-से पिंजरे में एक काला तीतर बड़ा हुआ था। अपने जीवन में वह कभी नहीं उड़ा था, क्योंकि उसका पिंजरा बहुत छोटा था। जब वह ६१ दिन का हुआ, तो उसकी दुम के पंखों में काले पंख नज़र आने लगे। वह एक ख़ूबसूरत काला पक्षी बन गया, जो अन्य वयस्क काले तीतरों से किसी भी तरह भिन्न नहीं था। वसंत आया, तो उसे मादा काले तीतरों के साथ एक बड़े बाड़े में छोड़ दिया गया। बड़े पिंजरे में यही उसका पहला और आख़िरी दिन था। कल के क़ैदी ने अपनी दुम फैलाई, एक किलकारी लगाई और अपना प्रणय-गीत "गुनगुनाने" लगा। अन्य नर काले तीतरों की तरह वह भी अपनी मिलन-स्थली में नाचने लगा कि तभी अचानक वह अपनी पीठ के बल गिर पड़ा और ऐंठने और तड़पने लगा। ज़रा ही देर में उसकी जान जाती रही। शव परीक्षा से पता चला कि उसकी महा-धमनी फट गई थी।

छोटे-से पिंजरे में ही अपना बचपन बितानेवाले एक नर बुलबुल की भी इसी तरह मौत हो गई। वह अपने गीत की पहली ऊंची कूक से मारा गया था, जिसके कारण उसे सांघातिक रक्तस्राव हो गया था।

इन प्रयोगों से क्या साबित होता है?

यह कि उड़ने, कूदने या अपने प्राकृतिक वातावरण में पशु-पक्षियों के लिए सामान्य अन्य व्यायामों के बिना उनके आंतरिक अंगों का अपर्याप्त विकास होता है। हृदय की और धमनियों की दीवारें पर्याप्त मज़बूत नहीं होतीं; वे अत्यधिक दुर्बल होती हैं और रक्तचाप में आकस्मिक वृद्धि को नहीं झेल पातीं। प्राकृतिक परिस्थितियों में भी जो बाल-पक्षी अपने घोंसलों को छोड़-कर जाते हैं, वे अकसर आघात से मर जाते हैं। आम तौर पर ऐसा तभी होता है, जब पक्षियों को बाज़ों या दूसरे दुश्मनों से जान बचाकर भागना होता है। एक बार मुझे बताया गया था कि एक बाज़ एक खेत पर मैनाओं के झुंड के पीछे लपका, तो कई छोटे पक्षी मरकर नीचे गिर गये। अकसर ऐसा होता है कि अचानक शिकारी की छोड़ी गोली की आवाज़ से आतंकित होकर हंसों के बच्चे जल्दी से जल्दी जान बचाकर भागने के लिए ज़ोरों से पंख फड़फड़ाते हैं, तो वे बेचारे भी मरकर गिर पड़ते हैं।

निश्चल जीवन का ख़रगोशों पर ख़ासकर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है। उनकी पिछली टांगों की पेशियां तो शक्तिशाली होती हैं, पर उनके हृदय कमज़ोर होते हैं। नन्हे ख़रगोश को पिंजरे से निकलने और बाहर उछलने-कूदने दिया जाये, तो उसकी अल्पविकसित हड्डियां टूट तक सकती हैं। बड़े ख़रगोश को भी अगर लगभग २५ दिन के लिए पिंजरे में बंद कर दिया जाये, तो उसकी पिछली टांगों की हड्डियां आसानी से टूट सकती हैं, जैसा कि ख़रगोशों को साइबेरिया में छोड़े जाने के समय देखा गया था।

जंगली मुर्ग़े, बुलबुल और ख़रगोश के बाद दो भूरे भालुओं के साथ प्रयोग किया गया।

जिन पिंजरों में उन्होंने अब तक अपनी ज़िंदगी गुज़ारी थी, उनसे बड़े नये पिंजरों में लाने के लिए उन्हें ज़बरदस्ती खींचना पड़ा था। गतिविधि की इस अपरिचित स्वतंत्रता के कारण उनका रक्तचाप बढ़ गया और वे आंतरिक रक्तस्राव के कारण मर गये।

एक दफ़ा एक शिकारी द्वारा चिड़ियाघर में लाया गया एक सफ़ेद ख़रगोश अपने पिंजरे से भाग निकला और उसने अपने आपको हमारे दोस्त, भालू पहलवान के बाड़े में पाया। वह उसके पीछे लपका, मगर तेज़ ख़रगोश ने पहलवान की सारी कोशिशों को बेकाम बना दिया। पीछा करनेवाले को पीछे छोड़ खरहे ने दो मीटर ऊंची छलांग लगाई और दीवार के एक बाहर निकले पत्थर पर जा पहुंचा, जहां वह दबककर बैठ गया। भालू उसे नहीं देख सका। उसने कोने-कोने को जाकर देखा, अपनी पिछली टांगों पर खड़ा हो गया और हवा को सुसकारने लगा। उसने अपनी नाक से सारी दीवार की छानबीन की और आख़िर ख़रगोश की गंध को पकड़ लिया। पहलवान अपने पंजों को फेंकता उस जगह के पास आया। ख़रगोश ने अचानक छलांग लगाई और सीधे भालू के सिर पर जा पहुंचा। उसे दबोचने की अंधाधुंध कोशिश में पहलवान फिसल गया और धड़ाम से ज़मीन पर जा गिरा और उसका सिर फटाक से दीवार से जा टकराया। दो घंटे तक वह इसी तरह पीछा करता रहा और यह एकदम मौक़े की ही बात थी कि इस पीछे का अंत भालू द्वारा कोने में एक घूंसे की चोट से इस चपल कूदनेवाले के मारे जाने के साथ हुआ।

भारी-भरकम पहलवान के लिए यह पीछा वैसे भी स्मरणीय था। इस अस्वाभाविक व्यायाम से वह इस क़दर थक गया था कि दो दिन तक उसने कुछ भी नहीं खाया, पीठ के बल ज़मीन पर पड़ा रहा और हर हरकत पर कराहता रहा। उसकी पेशियों में सचमुच बहुत दर्द हुआ होगा, क्योंकि चिड़ियाघर में निवास के इतने वर्षों में उसने एक ही दिन में कभी इतना व्यायाम नहीं किया था।
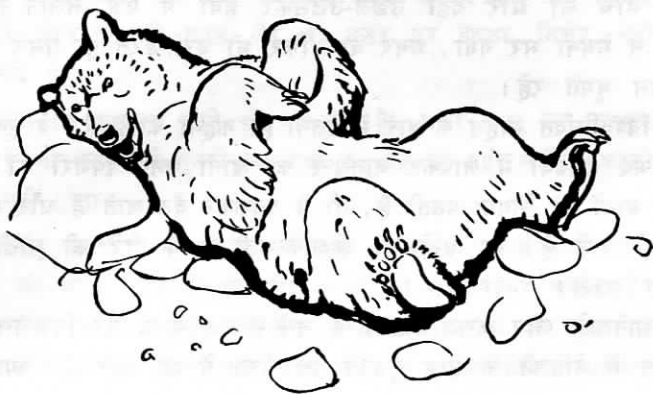
साहसी और कायर

कहावतों, परियों की कहानियों और किस्सों से हमें विश्वास है कि शेर और बाघ बहुत बहादुर, गधे मूर्ख, सूअर गंदे और ख़रगोश डरपोक होते हैं। मगर इनमें से कई बातें ग़लत हैं।

एक बार एक मेमना उस्सूरी बाघों के बाड़े में जा घुसा। इन बाघों ने बकरी पहले कभी नहीं देखी थी। यह देखकर कि मेमना उनकी तरफ़ निर्भीकतापूर्वक बढ़ता चला आ रहा है, डर के मारे ये जानवर गुर्राते हुए और अपने दांत दिखाते हुए पीछे दीवार की तरफ़ खिसकने लगे। मेमना अपनी मां की तलाश में आगे बढ़ता ही चला गया। बिलकुल विवश होकर बाघों ने अपनी आंखें भींच लीं और वहीं उछल-उछलकर हवा में पंजे चलाने लगे। उनके एक आकस्मिक प्रहार से मेमना मर गया, मगर बाघ फिर भी डरते-डरते ही उसके नन्हे-से निष्प्राण शरीर के आसपास घूमते रहे।

तो बाघ के विश्वविदित साहस के बारे में इतना ही कहना काफ़ी है। वे हत्यारे बेशक होते हैं। हर सुबह, जब गाड़ियों में लादकर जानवरों का खाना उनके पिंजरों को पहुंचाया जाता है और घोड़े पर बाघों की निगाह पड़ती है, तो वे दबककर बैठ जाते हैं और उस पर उछलने के लिए तैयार हो जाते हैं। पर घोड़े की ख़ुशक़िस्मती से वे बाड़े की मोटी खाई के पार छलांग नहीं लगा सकते।

चिड़ियाघर आनेवाले लोग जलजीवशाला में नन्हे-से स्वर्णमत्स्य को विकराल पाइक मछली के जबड़ों के पास से बेफ़िक्री के साथ गुज़रते देख हैरत में आ जाते हैं। क्या इसका कारण

यह है कि यह छोटा स्वर्णमत्स्य असाधारण रूप से साहसी है? जी नहीं, इसका कारण यह है कि पाइक स्वर्णमत्स्य की तरफ़ ध्यान देती ही नहीं, क्योंकि अपने प्राकृतिक पर्यावरण में वह रुपहली शल्की मछलियों का शिकार किया करती थी। पाइक ऋशियन मछली को भी नहीं छेड़ती, क्योंकि पोखरों-तालाबों के इन प्राणियों से वह अपरिचित है।

मास्को चिड़ियाघर के विशाल आठ मीटर लंबे जालीदार अजगर को आम तौर पर सफ़ेद दुधमुंहे सूअर खिलाये जाते हैं और वह उनका रंग देखने का आदी हो गया था। जैसे ही वह किसी सफ़ेद सूअर के बच्चे को देखता है, वह उसे अपने शक्तिशाली शरीर की लपेट में ले लेता है, उसका दम घोंट देता है और उसकी थूथनी की तरफ़ से शुरू करके उसे निगल जाता है। मगर अगर कहीं उसके पिंजरे में सूअर का चित्तीदार बच्चा रख दिया जाये, तो यह विशाल अजगर बस कुंडली लगाकर बैठ जाता है और बचाव की स्थिति अपना लेता है।

मेरे एक परिचित शिकारी, ग० ग० शूबिन को लापलैंड के पशु-संरक्षणालय में अनजाने में एक भूरे भालू ने आ दबोचा। भालू अपने सबसे ताज़ा शिकार – झाड़ियों में अपने मारे एक एल्क – की हिफ़ाज़त कर रहा था। वह इन झाड़ियों में से शिकारी पर झपटा, उन्हें नीचे गिरा दिया और उनके एक पैर को अपने दांतों में दबोच लिया। बरफ़ पर पड़े-पड़े ही उन्होंने किसी तरह अपनी दुनाली बन्दूक का घोड़ा चढ़ाया और भालू की तरफ़ निशाना लगाते हुए गोली दाग़ दी, मगर बंदूक चली ही नहीं। लेकिन फिर भी इस अजीब आवाज़ – धातु की खटखट – से भालू घबरा गया और उछलकर दूर जा खड़ा हुआ। दूसरी नली से छूटी गोली ने भालू को ज़ख़्मी कर दिया और वह झाड़ियों में भाग गया।

अफ़्रीका में फ़िल्म की शूटिंग के लिए जानेवाली एक टोली के सदस्यों ने मुझे शेरों के साथ अपनी मुलाक़ातों के बारे में कई बातें बताईं। अगर हवा का रुख़ टोली की कार की तरफ़ होता, तो खुली जगह में बिखरे शेरों का झुंड उसे अपने काफ़ी पास तक आ जाने देता था। लेकिन अगर हवा का रुख़ उलटा होता, तो उन्हें आदमियों की मौजूदगी की गंध मिल जाती थी और वे भाग जाते थे। इसका यही मतलब है कि कई दूसरे जानवरों की तरह शेर भी नज़र पर इतना निर्भर नहीं करते, जितना गंध पर।

गधे की मूर्खता तो कहावत जैसी ही बन गई है, मगर गधा क्या सचमुच बेवक़ूफ़ होता है? जो घटना मैं सुनाने जा रहा हूं, वह तो यही साबित करती है कि वह मूर्ख नहीं होता।

कई अन्य घरेलू जानवरों की तरह गधे भी मच्छरों, घुड़मक्खियों तथा अन्य परजीवियों को अपनी दुमों से या सीधे अपने को कंपकंपाकर भगाते हैं। मध्य एशिया में मैंने एक बार देखा कि एक शरारती लड़के ने एक कुत्ते की खाल से एक डांस पकड़ा और उसे एक गधे पर छोड़ दिया। अड़ियल

कीड़े को अपनी खाल पर महसूस कर गधा डांस की सख्त, पतली देह को कुचलने की कोशिश में ज़मीन पर लोटने लगा। मगर लड़का शरारत से बाज़ नहीं आया – उसने वैसा ही एक डांस और ढूंढ़ निकाला और उसे गधे पर छोड़ने के लिए चुपके से उसकी तरफ़ बढ़ने लगा। गधे ने उसके हाथ में डांस को देख लिया और उछलकर छोकरे को ऐसी दुलत्ती जमाई कि वह पास एक खाई में जा गिरा। कहने की ज़रूरत नहीं, कोई बेवकूफ़ जानवर इतनी होशियारी नहीं दिखा सकता था।

एक रूसी कहावत है – "ख़रगोश की तरह डरपोक।" ख़रगोश डरपोक या कायर नहीं होते। कई लोग इस बात को नहीं समझ पाते कि ख़रगोश के जीवन-संघर्ष में उसके मज़बूत पैर ही उसकी सबसे बड़ी संपत्ति हैं। अगर ख़रगोश इतने द्रुतगामी न हुए होते, तो उनके शत्रुओं ने कभी का उनका सफ़ाया कर दिया होता। पीछा करनेवाले से आगे निकल जाने की उसकी क्षमता ही आत्मरक्षा का उसका मुख्य हथियार है। लेकिन वह अपने दुश्मन के सामने से आंख मींचकर नहीं भागता, बल्कि आकस्मिकता आ पड़ने पर अत्यधिक तेज़ गति की एक दौड़ ही लगाता है – आम तौर पर वह इस बात का ध्यान रखता है कि अपने को थकने न दे। धीरे भागनेवाला शिकारी कुत्ता पीछा कर रहा हो, तो वह उससे महज़ ज़रा आगे ही रहता है और बीच-बीच में सिर घुमाकर उसे देख लेता है, मगर अगर पीछा करने-वाला बोर्ज़ोया कुत्ता है, जो अगर उससे तेज़ नहीं तो उसके बराबर ज़रूर भाग सकता है, तो वह अपनी तीव्रतम रफ़्तार से दौड़ लगाता है और फिर पीछा करनेवाले से आगे निकलने के बाद दो-तीन किलोमीटर और भागता रहता है। मगर यह कायरता नहीं है – ख़रगोश के पास भागने के अलावा अपनी जान बचाने का और कोई साधन नहीं है।

अस्कानिया-नोवा पशु-संरक्षणालय में मैंने यह नज़ारा देखा। स्तेपी में घोड़े का बच्चा चर रहा था कि तभी अचानक एक ख़रगोश आया और अपनी पिछली टांगों पर खड़े होकर उसने अपने अगले पंजों से घोड़े को खरोंच दिया। घोड़ा एकदम उछलकर अलग हो गया और ख़र-गोश मज़े में उसी जगह पर जम गया, जहां घोड़ा चर रहा था। एक और दिन मैंने देखा कि तीन ख़रगोश कुत्तों के झुंड से बचने के लिए भेड़ों के रेवड़ में निडरतापूर्वक जा घुसे।

ख़रगोश कुत्ते को देखकर सदा ही नहीं भाग खड़े होते। सरदियों की किसी रात में आप उसे कुत्ताघर में बंधे उसी कुत्ते के, जिसने दिन में जंगल भर उसका पीछा किया था, भौंकने की ज़रा भी परवाह किये बिना सब्ज़ियों के बाग़ में जड़ कुतरते हुए देख सकते हैं।

कई शिकारी ख़रगोश के मज़बूत पंजों से गंभीर रूप से घायल हो चुके हैं। घायल ख़रगोश को आप अगर असावधानी से उसके कान पकड़कर उठायें, तब भी वह अपने पिछले पैरों से आपको बुरी तरह खरोंचें मार सकता है।

कई शिकारी पक्षी अपनी जान के लिए लड़ते ख़रगोश द्वारा ही मारे जाते हैं। कुछ शिकारियों ने ख़रगोश को अपनी पीठ पर उलटकर और अपने पिछले पैरों को मार-मारकर

उक़ाब से अपनी रक्षा करते देखा है। कभी-कभी तो ख़रगोश उसकी आंतें तक निकाल देता है।

ख़ुद आपने भी कभी किसी कुत्ते को बहुत सावधानी के साथ किसी मुर्ग़ी के आसपास घूमते देखा होगा। इसका यही मतलब है कि किसी समय इस कुत्ते को अपने बच्चों की रक्षा करती मुर्ग़ी ने बुरी तरह चोंचें मारी होंगी। यह बात चाहे अजीब लगती हो, मगर चूज़ा भी सतानेवाले जानवर को डरा सकता है।

हमारे दक्षिणी स्तेपियों में रहनेवाला कामेंका नाम का छोटा-सा पक्षी तो और भी ज़्यादा दिलचस्प मिसाल पेश करता है। यह पक्षी गोफ़रों द्वारा ख़ाली किये पुराने बिलों में रहता है। जब गोफ़रों के बच्चे अपने मां-बाप का घर छोड़ते हैं, तो वे अकसर अपने पैतृक निवासों पर फिर क़ब्ज़ा करने की कोशिश करते हैं। यहीं ख़ूनी लड़ाइयां होती हैं। यह नन्हा-सा पक्षी अपने अधिक्षेत्र पर हमला करनेवाले दुश्मन का बहादुरी के साथ मुक़ाबला करता है, उसके कान खींचता है और उस पर चढ़कर स्तेपी में दौड़ लगाता है। इस तरह की कुछ मुठभेड़ों के बाद बेचारा गृहहीन गोफ़र उन बिलों के पास जाने से बचता है, जिनमें वह इन्हीं पक्षियों को देखता है।

न हमें शुतुरमुर्ग़ को ही भूल जाना चाहिए, जिसके बारे में समझा जाता है कि वह डर के मारे अपना सिर रेत में गाड़ देता है। शुतुरमुर्ग़ ख़ासा विकट शत्रु है–उसके पैरों की ठोकरें घोड़े की लात की चोटों से भी ज़्यादा सख़्त होती हैं। लेकिन अगर आप अपने टोप को छड़ी में रखकर उठा दें, तो शुतुरमुर्ग़ फ़ौरन भाग जायेगा–शुतुरमुर्ग़ केवल उन्हीं प्राणियों पर हमला करता है, जो क़द में उससे छोटे होते हैं।

अगर हमने सूअर को उसका वांछित स्थान न दिया और उसके कलंक को दूर न किया, तो इतनी बड़ी-बड़ी झूठी ख्यातियों की पोल खोलनेवाला यह अध्याय अधूरा ही रह जायेगा। हमें कहना होगा कि सूअर सबसे साफ़सुथरे जानवरों में से एक है। जिन फ़ार्मों में उनकी अच्छी तरह देखभाल की जाती है, वहां सूअर अपने बाड़े को साफ़ रखते हैं और दिशा फ़राग़त के लिए सबसे दूर के कोने को ही चुनते हैं। गरमी ज़्यादा हो, तो सूअर का मन पानी में डुबकी मारने को करता है, और इसमें भला बेचारे सूअर का क्या क़सूर है कि रास्ते में उसे तैरने के तालाब नहीं, नालियां ही मिलती हैं!

मिला-जुला परिवार

मास्को के चिड़ियाघर में सब तरफ़ से बंद एक लंबे-चौड़े मैदान में कई अलग-अलग जानवर एक साथ रहते थे। इनमें एक भूरा भालू, दो भेड़िये, तीन बिज्जू, छः उस्सूरी रैकून और छः लोमड़ियां थीं।

उन्हें शैशव से ही साथ-साथ पाला गया था।

"आप यह कर क्या रहे हैं?" कई दर्शक हमसे कहा करते थे। "जैसे ही ये जानवर बड़े हुए, शक्तिशाली जानवर कमज़ोरों का सफ़ाया कर देंगे। प्रकृति अपना असर दिखाकर रहेगी।"

दो साल बीत गये। जानवर बड़े-बड़े हो गये, मगर क़ुदरत ने अभी भी अपना असर नहीं दिखाया था। और इस कुनबे में कोई भी किसी से डरता नहीं था – बस, फ़रग़ाना स्तेपी के लाल बालों-वाले भेड़िये के सिवा, जो हर किसी की "चाटुकारी" किया करता था। अपनी लंबी, हट्टी-कट्टी काठी के बावजूद वह हमेशा निरीह और बेचैन ही लगता था और छोटी से छोटी लोमड़ी के आगे भी नहीं अड़ता था। अन्य युवा पशु उसे अच्छी नज़रों से नहीं देखते थे।

लगता था कि जैसे किसी अनकहे समझौते से सारा ही परिवार सख़्त "अनुशासक", मादा भेड़िये दीक्ता की आज्ञा मानता था। ठीक है कि उसे शांति क़ायम रखने के लिए ज़्यादा कुछ करना नहीं पड़ता था, क्योंकि शांति भंग शायद ही कभी होती थी। खाने की नांद पर दीक्ता को कभी-कभी अपने बड़े-बड़े सफ़ेद दांत दिखाने पड़ जाते थे और भालू – किनके – की अक़्ल ठिकाने करने के लिए यह काफ़ी रहता था। लालची लोमड़ियां अगर अपने हिस्से से ज़्यादा खाना ले लेतीं, तो भेड़िये अपनी थूथनियां मार-मारकर उसे उनके जबड़ों से गिरा देते थे।
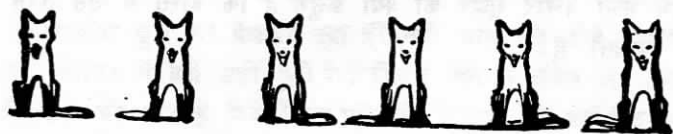
बिज्जू सभी के मित्र थे। वे तो भा-लुओं तक की ज़्यादा

परवाह नहीं करते थे।

कभी-कभी झगड़े हो भी जाते थे, मगर दीक्ता उन्हें जल्दी ही सुलझा देती थी, जो घटनास्थल पर लपककर पहुंच जाती थी और झगड़ा करनेवालों को अलग कर देती थी।

जो दर्शक इस आशा में बाड़े के पास देर-देर तक खड़े रहते थे कि जानवरों में झगड़ा अब छिड़ा, अब छिड़ा, उन्हें निराश होना पड़ता था – वहां मार्शल ला लागू करने की नौबत आई ही नहीं। इस कुनबे में व्याप्त व्यवस्था का कारण यही था कि ये जानवर छुटपन में एक-दूसरे के आदी हो गये थे। उनमें कई अनुकूलित प्रतिवर्त समान थे, जो उन्होंने उस समय से विकसित किये थे, जब उनका काटना ख़तरनाक नहीं था। उन्होंने अपने पारस्परिक संबंधों में एक ऐसे सलीक़े का इस्तेमाल करना सीख लिया था, जिससे गंभीर झगड़े पैदा हो ही नहीं पाते थे। मिसाल के लिए, एक लोमड़ी, जो बच्चे भेड़ियों के साथ-साथ बड़ी हुई है, उस गोश्त की तरफ़ दूसरी बार आंख उठाकर भी नहीं देखेगी, जो किसी भेड़िये को खाने के लिए दिया गया है। मगर वही लोमड़ी बर्फ़ पर सोते भेड़िये के ऊपर उछलकर चढ़ जायेगी और इस तरह मज़े में सोने लगेगी, मानो गरम सोफ़े पर सो रही है।

जानवरों को एक साथ पालने का यह प्रयोग वह तरीक़ा दिखाता है, जिससे मनुष्य उनके स्वाभाविक पारस्परिक संबंधों में ज़बरदस्त परिवर्तन ला सकता है।

जानवर अपने मौसम नहीं भूलते

मौसम ख़ूबसूरत था। न बारिश थी, न बादल। धूप निकली हुई थी – हरियाली भरी गलियों में भी ख़ासी गरमी थी। मगर मास्को के चिड़ियाघर में भारत से लाया गया अजगर सभी कुछ ऐसे ही कर रहा था, मानो सरदी आ गई है। वह सुस्त और उनींदा हो रहा था – उसके खाने के लिए पास जो दुधमुंहा सूअर रखा गया था, उसकी तरफ़ वह ध्यान भी नहीं दे रहा था। अजगर एक बाहर निकली चट्टान के नीचे निश्चल पड़ा था, मानो अपनी जन्मभूमि, भारत में, शुरू हो जानेवाली शीतकालीन वर्षा से बच रहा हो।

सरदियों में, जब भूरे-भूरे बादल नीचे ही तैरते होते हैं और फोहे जैसे हिमकण लगातार गिरते जाते हैं, चिड़ियाघर के आस्ट्रेलियाई शुतुरमुर्ग़ अपने अंडे सेना शुरू करते हैं। इससे उन्हें क्या कि चिड़ियाघर का सारा ही पार्क बर्फ़ से सफ़ेद हो रहा है! इन शुतुरमुर्ग़ों की जन्म-भूमि, आस्ट्रेलिया में, तो यह वसंत का मौसम है।

अक्तूबर और नवंबर में आस्ट्रेलिया के ही रहनेवाले काले हंसों ने अंडे सेना शुरू किया। दर्शक श्वेत हिमकणों से मंडित इन सुंदर पक्षियों को उनके नरकट से इतनी साव-धानीपूर्वक बुने घोंसलों पर बैठे देख सकते थे। हर घोंसले में पांच अंडे थे। नर और मादा बारी-बारी से उन पर बैठा करते थे।

सरदियों में प्रजनन जैसी इस विचित्र घटना का कारण आनुवंशिकता की शक्ति है और यह उन जंतुओं में देखी जा सकती है, जिन्हें अपने मूलस्थानों से पराये पर्यावरण में ले जाया गया है। कई-कई वर्षों के बाद भी इन पशुओं का अपने ही देश के कालक्रम के अनुसार जीवन-यापन करना जैव-आवर्तिता का, अर्थात प्राकृतिक पर्यावरण द्वारा युगों के दौरान किसी पशु में उत्पन्न विशिष्टताओं की अभिव्यक्ति का एक सजीव प्रमाण है।

तथापि यह नहीं समझ लेना चाहिए कि इन प्रक्रियाओं को बदला नहीं जा सकता। १९३६ में, काले हंसों के साथ प्रयोग करते हुए हमने उन्हें वसंत के आगमन तक अपने घोंसले

नहीं बनाने दिये। वे जो भी घोंसला बनाते, हम उसे नष्ट कर देते। आख़िर वसंत में हमने उन्हें तंग नहीं किया और तब उन्होंने अंडे दे दिये।

जैसे-जैसे वर्ष बीतते गये और काले हंसों की नई पीढ़ी बड़ी हो गई, उन्होंने वसंत में बर्फ़ का पिघलना शुरू होने के ठीक पहले अंडे देना शुरू कर दिया।

बिल्ली का यह न्यारा कुनबा

एक बार चार नवजात मुश्कबिलाव हमारे चिड़ियाघर में लाये गये, जिनकी अभी आंखें भी नहीं खुली थीं। हमने उन्हें एक सामान्य घरेलू बिल्ली को पालने के लिए दे दिया, जिसके खुद हाल ही में बच्चे पैदा हुए थे।

चिड़ियाघर के बाल-जीवविज्ञानी यह जानते थे कि पशु आंख की अपेक्षा गंध पर अधिक निर्भर करते हैं। इसलिए उन्होंने एक टब में पानी भरा और पहले उसमें बिल्ली के सभी बच्चों को नहलाया। इसके बाद उसी पानी में उन्होंने मुश्कबिलावों को भी नहलाया। यह कर चुकने के बाद उन्होंने बिल्ली के बच्चों और मुश्कबिलावों को बिल्ली के पास रख दिया। बिल्ली को पहले तो कुछ शक हुआ, मगर उसी पानी में नहाने के कारण मुश्कबिलावों की गंध भी उसके बच्चों जैसी ही हो गई थी, इसलिए उसने सभी को अपना ही मान लिया और सभी को चाट-चाटकर साफ़ करने लगी।
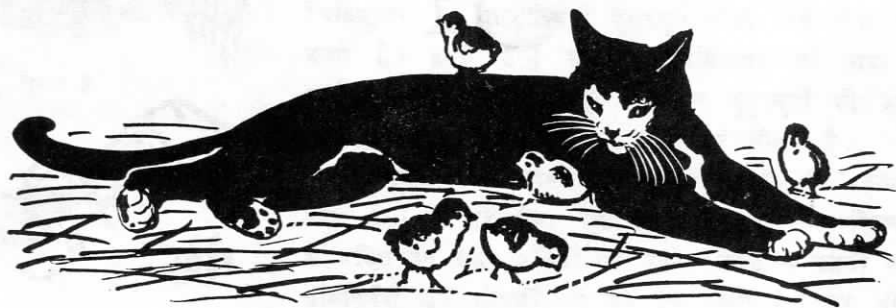
दिन बीतने के साथ पोषित मुश्कबिलाव बिल्ली की चौकस निगरानी में बिल्ली के बच्चों के साथ खेलने लगे।

पालतू मुश्कबिलावों का इस तरह चिड़ियाघर में पालन हुआ। वे अपने घर से कभी ज़्यादा दूर नहीं जाते थे। अलबत्ता अनजान लोगों को देखकर वे गुर्राते और छिप जाते थे। लेकिन जब भी वे बाल-प्रकृतिविदों* की आवाज़ सुनते, जो उनके बड़े मित्र थे, वे तुरंत बाहर निकल आते और बड़े अजीब तरीक़ों से अपना स्नेह जताते। बिल्ली अगर कोई चूहा पकड़ लेती और

---

*प्रकृतिविज्ञान में रुचि लेनेवाले बच्चों के संगठन के सदस्य।–सं०

अपने सारे कुनबे को खाने के लिए बुलाती, तो मुश्कबिलाव ही सबसे पहले पहुंचते और सबसे बड़ा हिस्सा पाते।

एक बार कोई लोमड़ी अपने पिंजरे से निकलकर भाग आई और उनके घर में आ घुसी। वह मुश्कबिलावों पर धावा बोलने को ही थी कि उनकी सौतेली मां उनकी रक्षा के लिए बीच में आ कूदी। अपनी कमर तानकर उसने मुश्कबिलावों को अपनी आड़ में ले लिया और लोमड़ी की तरफ़ ख़ूब गुर्राई और पंजे चलाने लगी।

कुछ समय बाद हमने इसी तरह का एक और प्रयोग किया।

हमारे बाल-प्रकृतिविदों ने चूहे का एक बिल देखा। उसे खोदते हुए वे बसेरे में पहुंच गये, जहां नौ नवजात अंधे चूहे गहरी नींद में पड़े हुए थे।

एक चूहे को वे एक बिल्ली के पास ले गये, जिसने अभी-अभी बच्चे दिये थे। बिल्ली ने चूहे पर इतनी तेज़ी से झपट्टा मारा कि बालक उसे बड़ी मुश्किल से ही बचा सके।

अब उन्होंने हमारे पिछले प्रयोग को दुहराते हुए पहले बिल्ली के बच्चों और फिर चूहे के सभी बच्चों को उसी पानी में नहलाया। इसके बाद सभी को बिल्ली के नीचे धर दिया गया। बिल्ली के भीगे हुए बच्चे बुरी तरह चिंचिया रहे थे, जिससे बिल्ली की मातृ-प्रवृत्ति जागृत हो गई। उसने चाट-चाटकर अपने बच्चों और चूहों को सुखा दिया, क्योंकि नहाने के बाद चूहों की गंध भी उसी के बच्चों जैसी हो गई थी।

चिड़ियाघर आनेवाले लोग सदा उस पिंजरे के बाहर भीड़ लगाये रहते, जिसमें यह न्यारा परिवार रह रहा था और कितने ही संशयी यही भविष्यवाणी किया करते थे कि बिल्ली थोड़े ही दिनों में "चालाकी समझ" जायेगी और चूहों को चट कर जायेगी। एक बुढ़िया बड़ी देर तक बिल्ली और चूहों को देखती रही और फिर नाराज़ी से बोली, "उफ़! बेचारे जानवर के साथ कैसी नीचता कर रहे हैं!"

हम उससे सहमत नहीं थे और अपने प्रयोग की सफलता से ख़ुश हो रहे थे।

चूहे बड़े हो गये और अपनी सौतेली मां और उसके बच्चों के साथ मज़े में रहते रहे। ठीक है, नौ चूहों में से केवल पांच ही बाक़ी रहे, मगर ये पांचों उनमें सबसे शक्तिशाली, मज़बूत और स्वस्थ थे। जो मर गये, वे कमज़ोर थे और उनमें से कुछ के मुंह इतने बड़े नहीं थे कि बिल्ली के स्तन से दुग्धपान कर सकें।

बिल्ली चूहों और अपने बच्चों के साथ एक-सा ही बर्ताव करती थी। वह उन सभी के लिए स्नेहमयी माता थी। अगर कोई चूहा ज़्यादा दूर चला जाता, तो वह उसे नरमी से अपने दांतों में दबा लेती और वापस लाकर डलिया में धर देती।

बड़े हो जाने के बाद भी चूहे अपनी सौतेली मां के साथ शांतिपूर्वक रहते रहे। कभी-कभी वह अपनी पीठ के बल लेट जाती और उनके साथ खेला करती थी।

बिल्लियों की मातृ-प्रवृत्ति असाधारण रूप से विकसित होती है। कुछ वर्ष पहले मुझे सा-

विनो स्टेशन के एक रेल-कर्मचारी की पत्नी का पत्र मिला था, जिसमें उसने यह बताया था कि किस तरह एक बिल्ली ने मुर्ग़ी के चूज़ों को पाला था।

किसी दुर्घटनावश चूज़े जन्म के तुरंत ही बाद अनाथ हो गये। इस सुकुमार अवस्था में उन्हें भोजन के अलावा गरमी की भी ज़रूरत थी।

यह गरमी उन्हें एक बिल्ली की देह से मिली।

उस स्त्री ने पांचों चूज़ों को उस बक्से में रख दिया, जिसमें वह बिल्ली – मूर्का – अपने बच्चों के साथ पड़ी हुई थी। अचरज की बात, बिल्ली उनके साथ बिलकुल मां की तरह पेश आयी और जब वे चूं-चूं करते थे, तो वह उनको चाटती थी।

पांचों चूज़ों में से एक नन्हा मुर्ग़ा ही बच पाया। वह बिल्ली के सभी बच्चों का गहरा दोस्त था और मूर्का ने, जो अपने बच्चों के लिए अकसर गौरैयां और दूसरे छोटे-छोटे पक्षी लाती रहती थी, कभी उसे मारने की कोशिश नहीं की।

इससे भी ज़्यादा आश्चर्यजनक कहानी स्वेर्दलोव्स्क प्रदेश के गारी नामक गांव से आये पत्र से सुनने को मिली।

कुछ बच्चों ने चूल्हे पर रखी पोस्तीन की टोपी को इनक्यूबेटर के तौर पर इस्तेमाल करके मुर्ग़ी के अंडों से तीन चूज़े प्राप्त किये। उनमें से एक ने सोचा कि इन चूज़ों को धुनैली नामक बिल्ली के सुपुर्द कर दिया जाये, जिसने कुछ ही पहले बच्चे दिये थे। बस, उन्होंने उसी दिन चूज़ों को उसके बच्चों के साथ रख दिया। धुनैली ने तुरंत उनको सूंघा और उनमें से एक को अपने दांतों में दबाने लगी। मगर इन बच्चों ने उसकी कसकर मरम्मत की और धुनैली को उनकी बात माननी पड़ी।

पहले दिन चूज़े कोई दो घंटे धुनैली के साथ रखे गये और बच्चे उस पर सख़्ती से नज़र रखे रहे। अगले दिन चूज़ों ने उसके साथ ज़्यादा वक़्त गुज़ारा। फिर, तीसरे दिन, बच्चों ने चूज़ों को रात भर धुनैली के साथ रहने देने का ख़तरा भी उठा लिया। प्रयोग पूर्णतः सफल रहा।

तीन सप्ताह गुज़र गये। चूज़े बिल्ली के बच्चों के साथ शांतिपूर्वक सोते और धुनैली उन सभी को समान स्नेह से चाटती। चौथे हफ़्ते के एक दिन दो चूज़े मरे हुए मिले। उनकी जान दुर्घटनावश चली गई थी – बिल्ली उन पर लेट गई थी, जिससे उनका दम घुट गया था।

जब बच्चों ने दोनों चूज़ों को मरा देखा, तो उन्होंने उन्हें भुसौरे के पीछे फेंक दिया। मगर धुनैली ने थोड़ी ही देर में अपने पोषितों को ढूंढ लिया और देर तक उन्हें इधर-उधर पलटती सूंघती रही। वह वहां से चल पड़ती और फिर वहीं आ जाती, मानो उनसे अपने पीछे आने को कह रही हो। धुनैली को शांत करने के लिए बच्चों को चूज़ों को ज़मीन में दफ़नाना पड़ा।

एक चूज़ा बच रहा था। वह दो महीने – धुनैली के सारे बच्चों के बांट दिये जाने तक – उसके साथ-साथ ही रहा। इसके बाद भी बिल्ली और चूज़ा पक्के मित्र बने रहे।

भेड़िये भाई-बहन

मास्को के चिड़ियाघर में दो बच्चे भेड़िये लाये गये। वे दोनों भाई-बहन थे और उनके नाम थे कस्कीर और कस्कीर्का, कज़ाख़ भाषा में जिनका मतलब होता है "नर भेड़िया" और "मादा-भेड़िया"। इन्हें अराल सागर के उत्तर में स्थित रेगिस्तान में पकड़ा गया था।

मास्को के चिड़ियाघर में कितने ही भेड़िये आ चुके हैं और सभी अलग-अलग स्वभाव के थे। कुछ पकड़े जाने के समय वयस्क होने के बावजूद आसानी से पालतू बन जाते थे, जबकि कुछ छुटपन से ही ख़ून के प्यासे होते थे। कस्कीर और कस्कीर्का का व्यवहार पहले दिन से ही बहुत शांतिपूर्ण था और जल्दी ही वे पूरी तरह पालतू बन गये।

थोड़े ही दिन के भीतर मैं मज़दूर क्लबों, फ़ौजी इकाइयों और विद्यालयों में अपने भाषणों में भी उन्हें अपने साथ ले जाने लगा। दोनों को मेरे सहकारी बनने के अभ्यस्त होने में ज़्यादा देर नहीं लगी। वे ख़ुशी-ख़ुशी मेरी कार में उछलकर चढ़ जाते थे और भाषण देते समय मेरे सामनेवाली मेज़ पर बैठ जाते थे और मुझे तथा दर्शकों को ध्यानपूर्वक देखते रहते थे।

चिड़ियाघर के एक बड़े हाल में एक भाषण के समय बड़ी भीड़ थी। मैं घरेलू कुत्ते की उत्पत्ति के बारे में बता रहा था और कस्कीर्का परदे के पीछे इस इंतज़ार में बैठी थी कि रखवाला उसे हाल में ले जाये। जब उसे दर्शकों को दिखाने का समय आया, तो हमें पता चला कि वह ग़ायब हो गई है। उसे शायद घर के वियोग ने सताया था और इसलिए अपने पट्टे से छूटकर वह भाग गई थी।

हम बहुत चिंतित हो गये – उस दिन चिड़ियाघर दर्शकों से भरा हुआ था। मगर कस्कीर्का बिलकुल अपने ही में रमी पार्क की भीड़ में से लपकती सीधे अपने पिंजरे की तरफ़ चल दी। पिंजरे के बंद दरवाज़े के आगे आकर वह खड़ी हो गई और प्रवेश दिये जाने के लिए याचना करने लगी।

एक और अवसर पर तो कस्कीर्का ने हमें और भी ज़्यादा डरा दिया – वह शहर के एक निकटवर्ती हलक़े में भाषण-स्थल से भाग खड़ी हुई। मगर इस बार भी हमारा डर निराधार साबित हुआ। यद्यपि भाषण में हम उसे कार में बैठाकर ले गये थे, पर वह मास्को की सड़कों पर भागती सीधे चिड़ियाघर ही पहुंची। वह किसी को खरोंच भी लगाये बिना अपने पिंजरे में जा पहुंची।

सड़कों में किसी ने भेड़िये की तरफ़ कोई ध्यान नहीं

दिया – लोगों ने उसे एक लंबा-चौड़ा अल्सेशियन कुत्ता समझ लिया होगा।

ये भेड़िये भाई-बहन जिन लोगों को अच्छी तरह जानते थे, उनसे बहुत स्नेह करते थे। हमने इन कृपापात्र लोगों पर कुछ "आक्रमण" आयोजित किये और तब ये शरीफ़ प्राणी एकदम ख़ूंख़्वार जानवर बन जाते थे।

अपने इरादों को किसी भी तरह ज़ाहिर किये बिना भेड़िये "हमलावरों" पर झपट पड़ते और अपने "दुश्मनों" को काफ़ी समय तक याद रखते। जब भी "हमलावर" भेड़ियों के पिंजरे के पास जाते, वे गुर्राने लगते और सींकचों के पीछे से उन पर झपटने की कोशिश करते।

कस्कीर और कस्कीर्का बड़े-बड़े भेड़िये हो गये, मगर फिर भी ज़ंजीर के भी बिना उनके साथ शहर के बाहर जाया जा सकता था। इस तरह हमने इस रूसी कहावत को झूठा सिद्ध किया कि "भेड़िये को चाहे कैसा ही अच्छा क्यों न खिलाओ, वह सदा जंगल वापस पहुंचने की ही कोशिश करेगा।" दोनों भेड़ियों ने मनुष्यों के पास से भागने की कोई कोशिश नहीं की।

भेड़ियों और उनके तौर-तरीक़ों के अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि कोई बीस हज़ार वर्ष पहले इन जानवरों को मनुष्य ने साधा और पालतू बनाया था और उन्होंने ही घरेलू कुत्तों की उन अनेक नसलों को पैदा किया, जिनसे हम आज परिचित हैं।

चिड़ियाघर में आनेवाले लोग अगर काफ़ी चौकस हों, तो वे इस बात को ख़ुद भी देख सकते हैं कि बाहरी समानता के बावजूद भेड़ियों के स्वभाव में बहुत विभिन्नता होती है। इन विभिन्नताओं ने ही सुदूर अतीत में हमारे पुरखों के लिए कुत्तों की विभिन्न नसलें पैदा करने के लिए आनुवंशिक परिवर्तनों के नमूने चुनना संभव बनाया। प्रसंगवश बता दें, किसी भी भेड़िये को इतना साधा जा सकता है कि वह स्लेजों में जुतनेवाले कुत्तों की टोली में इस्तेमाल किया जा सके। सुदूर उत्तर में पालतू भेड़िये बढ़िया से बढ़िया कुत्तों से बेहतर साबित होंगे, क्योंकि वे ज़्यादा मज़बूत और हृष्ट-पुष्ट होते हैं।

यद्यपि घरेलू कुत्ते, जो मनुष्य के मित्र हैं, सधाये और पालतू किये भेड़ियों के ही वंशज हैं, मगर जंगली अवस्था में ख़ुद भेड़िये पशुपालन और शिकारी ज़िलों को इतना नुक़सान पहुंचाते हैं कि उनको मारने का हवाई जहाज़ से गोली से उड़ाने सहित हर तरीक़ा जायज़ है।

पागल सील

दरबंत शहर के निकट कास्पियन सागर में एक बार एक अद्भुत घटना घटी। एक स्थानीय वैज्ञानिक ने मुझे इसकी कहानी सुनाई थी, जो इस प्रकार है।

एक आदमी, जो तैरना नहीं जानता था, फुलाये हुए टायर-ट्यूब को पकड़कर उसके सहारे गहरे पानी में चला गया।

अचानक एक कास्पियन सील सतह पर आई और उस बेचारे पर टूट पड़ी। संकट की इस घड़ी में आदमी ने अपने शरीर की परवाह किये बिना अपने ट्यूब की वीरतापूर्वक रक्षा की और अपने घूंसों से सील का मुक़ाबला किया।

"बचाओ! बचाओ!" उसकी पुकार काफ़ी दूर तक चली गई।

उसकी चीख़ को कुछ मछियारों ने सुन लिया, जिनकी नाव वहां से ज़्यादा दूर नहीं थी।

युद्ध-स्थल पर उनके पहुंचने के साथ ही सील ने ट्यूब को फाड़ दिया। वह बेचारा पत्थर की तरह समुद्र के पेंदे में जा बैठता, पर मछियारों ने उसे वक़्त पर बचा लिया। उसकी टांगों को सील ने बेतरह काट लिया था और उनसे बुरी तरह ख़ून बह रहा था।

एक मछियारे ने सील के सिर पर अपने चप्पू से चोट की। उसने गोता मारा और तट की तरफ़ तैरकर चली गई। जब वह घिसटकर तट पर आई, तो मछियारों ने चाक़ू से उसे मार डाला।

मुझसे कहा गया कि मैं कास्पियन सील के इस असाधारण आचरण का कारण बताऊं। सील के आदमी पर हमला करने की बात मैंने पहले कभी नहीं सुनी थी, इसलिए मैंने बड़े-बड़े अधिकारी विद्वानों से, जिन्होंने विभिन्न समुद्रों की सीलों का अध्ययन किया था, इस बारे

में पूछा। उनमें से कोई मेरी सहायता न कर पाया। तब मैंने महसूस किया कि समय को ज़रा भी गंवाया नहीं जा सकता।

"सील पागल थी," मैंने इस बेचारे स्नानी को तार दिया, "टीके लगवाना ग्रत्यावश्यक है।"

मगर सील को ग्रलर्क रोग कहां से हुग्रा? शायद उस सील को, जो तट पर बहुत ही सुस्त होती है, धूप सेंकते समय किसी पागल गीदड़ ने काट लिया होगा। यह विचार ग्रौर भी ज्यादा विश्वसनीय लगता था, क्योंकि यह इलाक़ा गीदड़ों से संत्रस्त था ग्रौर उनमें ग्रलर्क रोग ख़ासा फैला हुग्रा था।

ग्रलर्क तभी फैलता है, जब कोई संक्रमित पशु किसी स्वस्थ पशु को काटता है। पागल चूहे, बिल्लियां ग्रौर कुत्ते ग्रकसर दूसरे जानवरों को काटते हैं। दूसरे जानवरों पर हमला करनेवाली एक पागल गौरैया का मामला भी देखने में ग्राया है। एक भेड़िये को, जो कई साल पिंजरे में ग्रकेला रहा था, एक चूहे ने ग्रलर्क की छूत लगाई थी।

ग्रगर सारे ही ग्रलर्क जानवरों का एकदम विनाश कर दिया जाये, तो इस भयानक बीमारी का पूरी तरह ख़ात्मा हो जाये। ब्रिटेन में ग्रलर्क के उन्मूलन के लिए उठाये गये क़दमों के फलस्वरूप ग्राज यह रोग सर्वथा ग्रज्ञात है ग्रौर वहां बाहर से लाये गये पशुग्रों को लंबे समय तक कारंटाइन (संगरोध) में रखा जाता है।
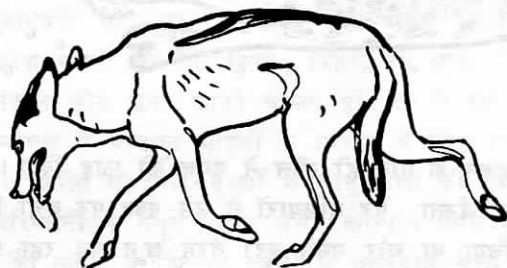
जीनदा

भारतीय हथनी जीनदा बारह बरस मास्को के चिड़ियाघर में रही। उसके पहले वह बुख़ारा में भारी रोलर से सड़कों को इकसार किया करती थी ग्रौर पेड़ों के ठूंठ उखाड़ा करती थी। समाजवादी क्रांति के बाद, गृहयुद्ध के ज़माने में वह भारी तोपों को खींचकर मोर्चे पर ले जाया करती थी।

बुख़ारा में जीनदा खुले में रहा करती थी। गरमियों में उसे फलोद्यान में किसी पेड़ के तने पर टिके ग्रौर ऊंघते देखा जा सकता था।

बाद में उसे मास्को के चिड़ियाघर को भेंट कर दिया गया। इतने बड़े जानवर को मास्को भेजना एक ख़ासी समस्या बन गया। मालगाड़ी के डिब्बे उसके लिए छोटे पड़ते थे ग्रौर बिना दीवारों ग्रौर छतवाले डिब्बे पर सवार करके उसे मास्को ले जाने की बात हम सोच भी नहीं सकते थे। ग्राख़िर हमने बिना दीवारवाले एक बड़े डिब्बे पर जीनदा के लिए एक विशेष निवास बनाने का निश्चय किया।

पहियोंवाले इस मकान के बन जाने के बाद हमारे सामने यह विकट समस्या पैदा हुई कि जीनदा को उसमें घुसायें कैसे। प्लेटफ़ार्म छोड़ने के पहले उसने ग्रपने पैरों ग्रौर सूंड़ से उसके फ़र्श की ग्रच्छी तरह ग्राज़माइश की। उसके भीतर घुसने के साथ दरवाज़ा बंद कर दिया गया।

इंजन-ड्राइवर गाड़ी को जितना हो सकता था, उतने ग्राहिस्ते-ग्राहिस्ते चला रहा था, मगर इस ग्रपरिचित ग्रनुभूति से जीनदा चौंक गई। वह इतनी उत्तेजित हो गई कि उसने मज़बूती से बने इस डिब्बे को कुछ ही मिनटों के भीतर तोड़-फोड़ दिया। मगर जैसे ही उसे ऊपर ग्राकाश दिखाई दिया, वह शांत हो गई। इसलिए ग्राख़िर हम उसे मास्को खुली, बिना दीवारों ग्रौर छतवाली गाड़ी में ही ले गये।

सफ़र भर जीनदा का ग्राचरण बहुत ही ग्रच्छा रहा। उसे ऊपर पुल नज़र ग्राता, तो वह पिछली टांगों के बल बैठ जाती। सामने की तरफ़ से कोई रेलगाड़ी ग्राती, तो वह डिब्बे में दूसरी तरफ़ चली जाती।

जीनदा जैसे ग्रसाधारण यात्री के सफ़र करने की ख़बर स्टेशन-स्टेशन होकर ख़ुद रेल-गाड़ियों की ग्रपेक्षा बहुत तेज़ी के साथ जा रही थी। इसलिए जीनदा को देखने के लिए लोगों की भीड़ लग जाया करती थी। वह विश्वासपूर्वक ग्रपनी सूंड़ उनकी तरफ़ बढ़ाकर रोटी ग्रौर ख़रबूज़ों जैसी स्वादिष्ट चीज़ों की मांग किया करती थी।

एक स्टेशन पर जीनदा दर्द से चीख़ पड़ी ग्रौर उसने भीड़ में से एक मोटे-ताज़े ग्रादमी को ग्रपनी सूंड़ से उठा लिया ग्रौर भीड़ के ऊपर से रेलवे लाइन के पास झाड़ियों के एक झुंड में फेंक दिया। ख़ुशक़िस्मती से ग्रादमी को ज़्यादा चोट नहीं लगी—कुछ खरोंचों ग्रौर

गुमटों से ही उसे छुटकारा मिल गया। उसने क़बूल किया कि उसने हथनी की सूंड़ में सूई चुभाई थी।

७ जुलाई, १९२४ को गाड़ी मास्को पहुंची। सुबह ३ बजे जीनदा का महावत उस पर सवार हो उसे मास्को की सड़कों पर होते हुए चिड़ियाघर में उसके नये घर की तरफ़ ले चला। इतनी सुबह भी ख़ासी बड़ी भीड़ हथनी के पीछे-पीछे चिड़ियाघर के फाटक तक गई।

जीनदा में अद्‌भुत शक्ति थी। जब वह घूमने के लिए जाना चाहती थी, तो बेसब्री से अपने बाड़े की लोहे की मोटी-मोटी छड़ों को टेढ़ा कर देती थी। एक बार उसके बाड़े का भारी सरकवां किवाड़ अपनी पटरी से उतर गया। कई लोगों ने मिलकर सब्बलों के सहारे उसे पटरी पर फिर चढ़ाने की कोशिश की, मगर वे उसे टस से मस भी न कर सके।

घंटे भर से ज़्यादा वे इसी काम में लगे रहे, मगर असफल रहे। फाटक का वज़न एक टन के क़रीब था। उनमें से एक आदमी ने मज़ाक में जीनदा को मदद के लिए बुलाया। हथ-

नी फ़ौरन आ गई, सावधानी के साथ उसने आदमियों को अलग सरकाया और दरवाज़े को अपनी सूंड़ से धकेला। वह फ़ौरन अपनी जगह जाकर बैठ गया।
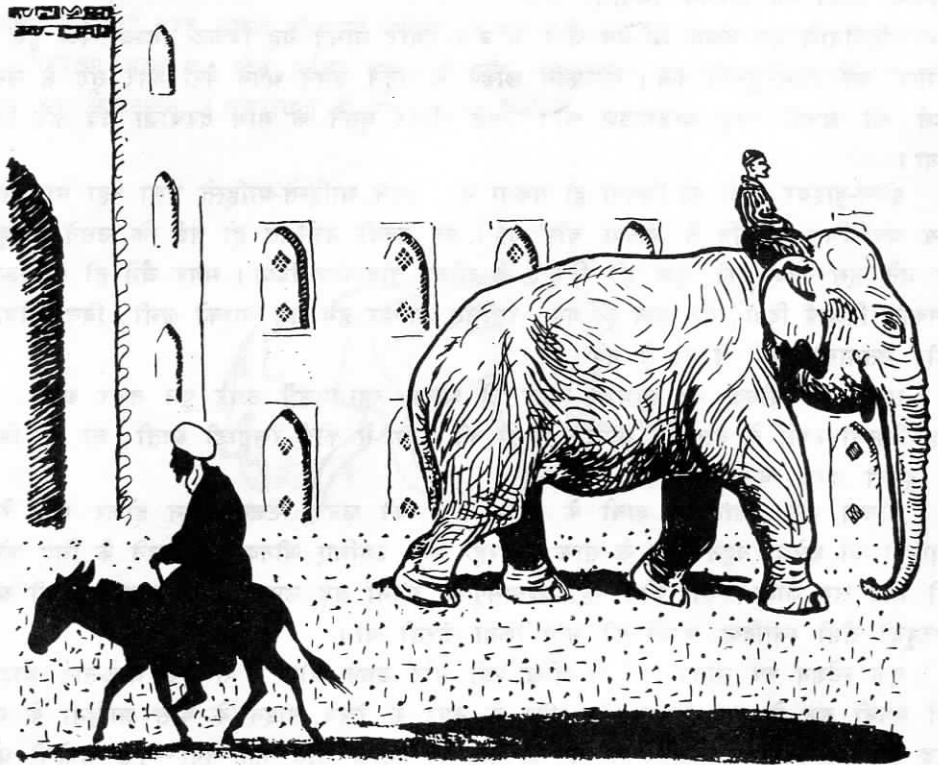
सोते समय जीनदा करवट पर लेटकर अपनी टांगों को फैला देती थी। सारी इमारत उसके खर्राटों से गूंजने लगती थी। मगर अगर वह किसी बात से चौंक उठती, तो इतनी तेज़ी के साथ उछलकर खड़ी हो जाती थी कि इतने भारी-भरकम और देखने में सुस्त जानवर में उसकी कल्पना भी करना मुश्किल है।

जंगली हाथियों को अपने खुरों और पैरों के तलुओं की परवाह नहीं करनी पड़ती, क्योंकि वे पत्थरों और ऊबड़-खाबड़ ज़मीन से घिसते रहते हैं। मगर क़ैद में उनको काटते रहना ज़रूरी हो जाता है। जीनदा इस काम को बड़ी धीरता के साथ करवाती थी। अगर यह बहुत ही तक़लीफ़देह हो जाता, तब ही वह फ़र्श पर अपनी सूंड़ को ग़ुस्से में फटफटाकर अपनी नाराज़ी ज़ाहिर करती थी।

एक बार हुआ यह कि इस काम को करनेवाले आदमी ने न इस अनिष्टसूचक फट-फट की तरफ़ ध्यान दिया और न जीनदा की ऊंची और धमकी भरी चिंघाड़ की ही तरफ़। वह उसके खुरों को घिसता ही रहा। इस पर जीनदा ने उसे सावधानी के साथ गर्दन से उठाया और बाड़े के बाहर फेंक दिया।

चिड़ियाघर में अपने अंतिम दो वर्षों में जीनदा पर ५२ वर्ष की अवस्था में प्रत्यक्षतः बुढ़ापा आने लगा। वह अकसर बीमार रहती थी, ज़्यादातर लेटी रहती थी और पैरों को घसीटती हुई चला करती थी। हाथियों के बाड़े की मरम्मत ज़रूरी हो गई थी, इसलिए उन्हें मृगों के बाड़े में पहुंचा दिया गया। हाथियों को वहां अच्छा नहीं लगता था और जीनदा को तो वहां लेटना तक पसंद नहीं था। वह अपने चौड़े माथे को लोहे के मोटे जंगले पर टिकाकर खड़ी-खड़ी ही सोती थी और जंगला उसके भार से झुक जाता था।

दिसंबर, १९३६ में जीनदा आख़िरी बार लेटी। उसकी सहेली, जवान हथनी मान्का, बहुत ही परेशान नज़र आती थी। उसने जीनदा की बूढ़ी टांगों को अपनी सूंड़ से रगड़ा और उठने में मदद देने की कोशिश की। मगर जीनदा तेज़ी के साथ अशक्त होती जा रही थी।

दो दिन बाद, २३ दिसंबर को वह मर गई।

शव-परीक्षा से पता चला कि उसकी चारों बड़ी-बड़ी दाढ़ें जड़ तक सड़ गई थीं।

बुढ़ापे में जीनदा ने अपने खाने को चबाना बंद कर दिया था – वह उसके खोखले दांतों और उनके तथा मसूड़ों के बीच की जगहों में घुस जाता था।

उसके सभी अंग बुरी तरह क्षय हो चुके थे। उनका आकार आश्चर्यजनक था। उदाहरण के लिए, हर गुर्दे का वज़न १६ किलोग्राम था, तिल्ली २ मीटर लंबी थी, श्वासनली का व्यास ७ सेंटीमीटर था। उसकी आंतों की कुल लंबाई ३० मीटर से अधिक थी।

उसके फेफड़ों का वज़न लगभग १०० किलोग्राम था। सबसे अचरज की बात यह थी कि जीनदा के मस्तिष्क का भार ५ किलोग्राम के लगभग था, अर्थात हाथियों के दिमाग़ के औसत भार से कोई डेढ़ किलोग्राम ज़्यादा।

बहुत से लोगों को हमसे यह सुनकर बड़ा ग्राश्चर्य हुग्रा कि जीनदा की मृत्यु बुढ़ापे के कारण हुई है।

"ग्ररे, उसकी उम्र तो ५५ साल भी नहीं थी। क्या ग्राप इसी को बुढ़ापा कहते हैं! हमने तो सुना है कि हाथियों की उम्र २०० साल होती है!"
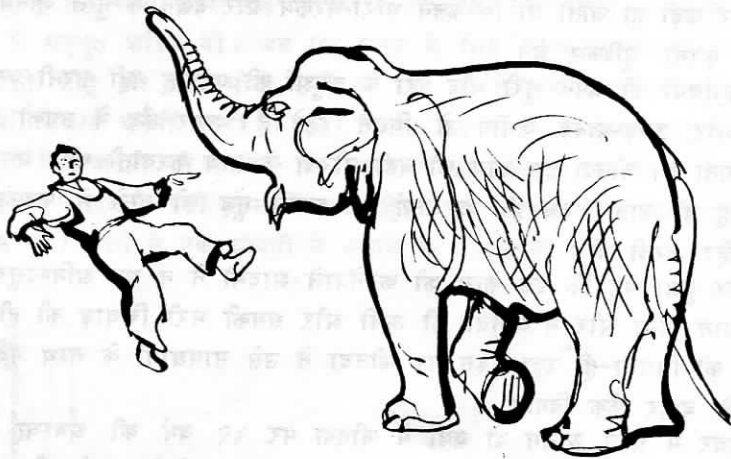
मगर तथ्यों से पता चलता है कि हाथियों की दीर्घजीविता की यह धारणा ग्रतिरंजित है। सर विलियम फ़्लाग्रर के ग्रनुसार यूरोप के विभिन्न चिड़ियाघरों में रहनेवाले ४४ भारतीय हाथियों में से सिर्फ़ एक ही हाथी चालीस वर्ष की ग्रवस्था तक ज़िंदा रहा ग्रौर तीन हथनियों ने पचास या इकावन की उम्र प्राप्त की।

ग्रगर हम हिंदुस्तान में हाथियों की वास्तविक ग्रायु जानने की कोशिश करें ग्रौर कही-सुनी बातों पर विश्वास न करें, तो हमें पता चलेगा कि वहां भी वे कोई ज़्यादा नहीं जीते। हो सकता है कि हाथी ६० वर्ष की ग्रवस्था तक जी लें, मगर ऐसा कोई मामला ग्रब तक दर्ज नहीं किया गया है।

ग्राम तौर पर यह विश्वास करना कठिन है कि ये जानवर इससे भी ज़्यादा जी सकते हैं, क्योंकि वे बड़ी हद तक ग्रपने दांतों पर ही निर्भर करते हैं। हाथियों के केवल चार दाढ़ें ही होती हैं—हर जबड़े पर एक-एक जोड़ा। इन दांतों से वे चक्की के पाट की तरह मोटी-से-मोटी डालियों को भी चबा डालते हैं। ये दाढ़ें धीरे-धीरे घिस जाती हैं ग्रौर उनकी जगह नई दाढ़ें निकल ग्राती हैं। हाथी के जीवन-काल में ऐसा छः बार होता है। ग्रंतिम दाढ़ तब निकलती है, जब हाथी लगभग ४० साल का होता है ग्रौर यह कोई १० बरस चलती है।

जीनदा के दांत ग्राख़िरी बार उसकी मृत्यु के लगभग ११ साल पहले निकले थे। इस तरह यह वयोवृद्धा हाथियों से ग्रधिक ही दिन ज़िंदा रही थी।

खोदू कुत्ते

ओरेनबुर्ग का बूचड़खाना शहर के सिरे पर, एक गहरे खड्ड के पास था। डाक्टर जिन कटे हुए जानवरों को खाने योग्य नहीं समझते थे, उनकी लाशें खड्ड में गाड़ दी जाती थीं।

पहले ये लाशें उथले गढ़ों में गाड़ी जाती थीं, मगर इन लाशों को खोदने के लिए खड्ड के पेंदे में कुत्तों के झुंड इकट्ठा हो जाया करते थे। यह नहीं होने दिया जा सकता था, क्योंकि कुत्तों द्वारा दूषित मांस से छूत का फैल जाना निश्चित था।

इसलिए कई-कई मीटर गहरे गढ़े खोदे जाने लगे, मगर इससे भी कोई फ़ायदा नहीं हुआ। कुत्ते अब भी लाशों को खोद निकाल लेते थे।

ओरेनबुर्ग में कई लोगों ने कुत्तों को अपने काम में जुटे देखा था। एक प्रत्यक्षदर्शी ने इन खोदू कुत्तों की "कार्यविधि" का इस प्रकार वर्णन किया है: "मुझे यह देखकर अचरज होता था कि उनका काम कितनी अच्छी तरह संगठित था। जैसे ही एक कुत्ता थकने के आसार दिखाता, झुंड में से कोई और उसकी जगह ले लेता और गढ़ा गहरा ही होता चला जाता..."

उनकी "कार्यविधि" से मुझे अचरज नहीं हुआ, क्योंकि अपनी शिकार यात्राओं के दौरान मैं कुत्तों को अकसर सख्त धरती तक में बड़े-बड़े गढ़े खोदते देख चुका हूं।

कुत्ते किसी छोटे जानवर का पीछा करके उसे किसी गहरी मांद या बिल में जा छिपने को विवश कर देते हैं और फिर अपने अगले पंजों से तेज़ी से खुदाई के काम में लग जाते हैं। यह काम बहुत मुश्किल है और कुत्ता जल्दी ही थक जाता है। भारी-भारी सांस लेता हुआ वह आराम करने के लिए पास पड़ जाता है और उसकी जगह कोई और कुत्ता ले लेता है। आम तौर पर इस अदला-बदली में ज़रा भी देर नहीं लगती।

जीभें लटकाये आराम करते ये चौपाये बेलदार खुदाई में लगे कुत्ते को देखते रहते हैं और जैसे ही वह थकने लगता है, उसकी जगह ले लेते हैं।
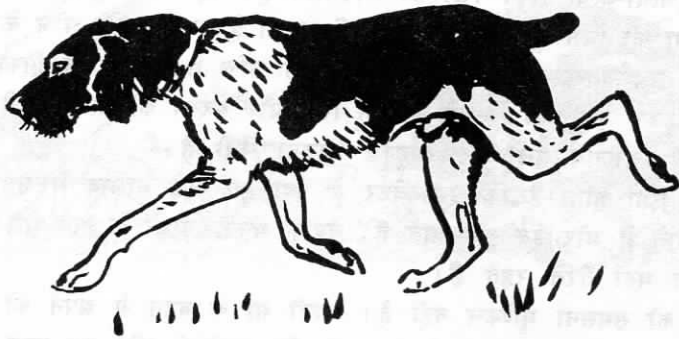
गंधहीन बतखें

"मैंने जो यह शिकारी कुत्ता लिया है, किसी काम का नहीं है। बतख़ अपने अंडों पर बैठी थी और यह गधा उससे दो क़दम की दूरी से निकल गया!" एक नाराज शिकारी कह रहा था।

उस "गधे" का कोई क़सूर न था। अपने अंडों पर बैठी बतख़ की गंध ले पाना लगभग असंभव है।

पक्षियों के बदन पर दुम के आधार के ठीक ऊपर एक दुहरी ग्रंथि के अलावा न वसा-ग्रंथियां होती हैं और न स्वेद ग्रंथियां। इस दुहरी ग्रंथि को अनुत्रिक ग्रंथि कहते हैं और यह एक सुगंध वसीय पदार्थ स्रावित करती है। पक्षी अपनी चोंचों से इस ग्रंथि को दबाकर वसा को निकाल लेते हैं और उससे अपने पंखों को चिकना लेते हैं। तैरनेवाले पक्षी घंटों पानी में बिना भीगे तैर सकते हैं। इसीसे यह कहावत पैदा हुई है "बतख़ की पीठ पर पानी की तरह"।

चिड़िया जिस समय अपने अंडों पर बैठी होती है, तब वह अपने पंखों को नहीं चिकनाती और इसलिए उसकी वह गंध ख़त्म हो जाती है, जिससे कुत्ता काफ़ी दूर से उसका पता चला सकता है। यह विशेषता पंखदार परिवारों की उस काल में रक्षा करती है, जब वे सबसे अधिक निरुपाय होते हैं—जब वे गंध नहीं देते, तब उनके दुश्मन अकस्मात ही उन तक पहुंच सकते हैं। इसके अलावा, अगर मादा बतख़ अंडे सेते समय अपने पंखों को चिकनाती, तो उन पर वसा की परत चढ़ जाती, जिससे अंडों के आवरण के वे रंध्र बंद हो जाते, जिनसे भ्रूण आक्सीजन प्राप्त करता है और बेचारा चूज़ा पैदा हुए बिना ही मर जाता।

जैसे ही चूज़े अंडों से निकलते हैं, उनकी मां अपने को सजाना शुरू कर देती है। एक

बार फिर वह जल्दी-जल्दी अपने पंखों को चिकनाती है। वह अपनी दुम के ऊपरवाली नन्ही-सी ग्रंथि से वसा की जिस बूंद को पिचकाकर निकालती है, वह उसकी चोंच के शृंगीय खांचों पर फैल जाती है। बतख़ अपने हर पंख को अपनी चोंच से उसी तरह निकालती है, जैसे उन पर कंघी कर रही हो। सबसे बाद में सिर और गरदन की बारी आती है। इन्हें वह अपने शरीर के चिकनाये पंखों पर रगड़कर चिकना लेती है।

कभी-कभी ऐसा होता है कि इनक्यूबेटर में पैदा हुए चूज़े तालाब में उतरने पर जल्दी ही गीले हो जाते हैं और डूब तक जाते हैं, जबकि अपनी मांओं के पाले-पोसे चूज़े ज़रा भी गीले हुए बिना घंटों तैरते रहते हैं।

इस बात को समझना मुश्किल नहीं है। अपनी मां के बदन से अपने को गरमाते समय ये चूज़े अपने रोयें को उसके चिकनाये हुए पंखों से रगड़ते हैं और इस तरह अपनी तालाब की निरापद यात्रा सुनिश्चित कर लेते हैं। इसके विपरीत, मातृहीन, इनक्यूबेटर जनित चूज़ों को वसा का यह स्रोत नहीं मिल पाता और वे अपने को अच्छी तरह नहीं चिकना पाते। उनका रोयां गीला और भारी हो जाता है और वे पेंदे में जा बैठते हैं। अगर वे किसी तरह किनारे पर आ भी लगें, तब भी अकसर ठंड के कारण मर जाते हैं।

इस बात की जांच करने के लिए हमने अपने अंडों पर बैठनेवाली कई बतख़ों के और कुछ उन बतख़ों के पर उखाड़े, जिन्होंने अभी अंडे देना शुरू नहीं किया था। पंखों के विश्लेषण से (सोक्सलेत उपकरण में) पता चला कि पहले मामले में उनमें चिकनाई लगभग बिलकुल ही नहीं थी, जबकि दूसरे मामले में वे ख़ूब चिकनाये हुए थे।

बिज्जुओं का धूप-स्नान

यह आम तौर पर ज्ञात है कि कोई भी स्तनपायी जीव सूर्य के प्रकाश के बिना ठीक से विकास नहीं कर सकता। लेकिन अगर बात यही है, तो बिज्जू जैसे जानवर, जो अंधियाले बिलों में रहते हैं और सूरज छिपने के बाद ही बाहर निकलते हैं, किस तरह अपने बच्चों का पालन-पोषण करते हैं? जैसा कि तुम जानते हो, उनके ज़मींदोज़ घरों में खिड़कियां तो होतीं नहीं, जबकि नन्हे बिज्जुओं को भी धूप की उतनी ही ज़रूरत होती है, जितनी कि किसी भी दूसरे नन्हे जानवर को।

इस सवाल ने चिड़ियाघर के बाल-जीवविज्ञानियों की दिलचस्पी को जगा दिया। बच्चों ने एक बिज्जू निवास के पास दिन-रात चौकसी की और उन्होंने यह जानकारी हासिल की।

धूपदार सुबहों को मादा बिज्जू अपने बच्चों को धूप-स्नान के लिए बाहर लाती थी। उन्हें वह एक-एक करके, बड़ी सावधानी के साथ अपने दांतों में पकड़े-पकड़े ऊपर लाती थी और किसी धूप भरी सपाट जगह ले जाती थी। वह उन्हें कभी चिलचिलाती धूप में नहीं छोड़ देती थी, बल्कि किसी पेड़ या झाड़ी के नीचे चित्तीदार छांह में ही रखती थी।

कहावत है कि हर चीज़ ठीक ही मिक़दार में होनी चाहिए और धूप-स्नान के बारे में तो ये शब्द ख़ास तौर पर सही हैं। जैसे ही बच्चे अपनी ऊंची आवाज़ करके यह जताते कि उन्हें काफ़ी धूप मिल चुकी है, मां उन्हें तेज़ी से बिल में वापस ले जाती। कभी-कभी तो वह इतनी जल्दी में होती थी कि वह दो-दो बच्चों को एक साथ उठाकर ले जाती थी।

यह जल्दबाज़ी बिलकुल उचित थी, क्योंकि अंधेरे के आदी इन नन्हे जानवरों को अकसर सख़्त आतपघात हो जाता है। उदाहरण के लिए, हमारे चिड़ियाघर में दो बाल चीतों को जब पहली बार उनके पिंजरे से धूप में ले जाया गया, तो वे आतपघात के कारण मर गये। एक बंदर, एक अफ़्रीकी सांप और एक महाकाय गोह तक के साथ यही हुआ, जिन्होंने सारी सरदी धूपहीन निवासों में ही बिताई थी।

4—1440

धूप सभी जानवरों के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, लेकिन अधिक मात्रा में यह ख़तरनाक होती है। जानवर को इसका आदी होना चाहिए, त्वचा के अरक्षित भागों का धीरे-धीरे आतपदाह होना चाहिए। आतपदाह एक तरह का रंगीन छन्ना है, जो पराबैंगनी किरणों सहित प्रकाश की किरणों को सही मात्रा में प्रवेश देता है।

मादा इस बात का ध्यान रखती है कि बाल बिज्जुओं को धूप की उतनी ही मात्रा प्राप्त हो, जिससे उनके स्वास्थ्य या जीवन का ख़तरा न हो। उसका आचरण प्राकृतिक वरण द्वारा निर्धारित किया गया है, जिसमें वही जानवर बच सके, जो अपने पर्यावरण के लिए सबसे अधिक अनुकूलित थे।

शरतकालीन ग्राहार
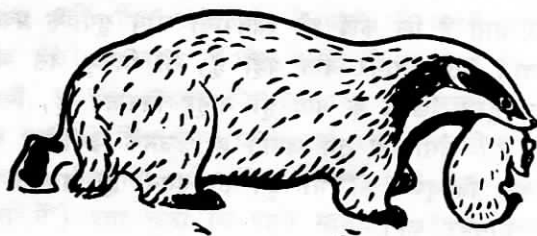
हर गरमी में ग्रांतों के कीड़े सफ़ेद, भट ग्रौर काले तीतर, ग्रौर काले मुर्ग़े जैसे जंगली पक्षियों को बहुत परेशान करते हैं।

तुम शायद सोचो कि सरदियों में, जब खाने की क़िल्लत हो जाती है, इन पक्षियों का मर जाना ग्रनिवार्य है, क्योंकि उनकी ताक़त को इन परजीवियों ने क्षीण कर दिया होगा। लेकिन ऐसी बात नहीं है। जैसे ही जंगल में बेरियों ग्रौर घास पर बर्फ़ जम जाती है, पक्षी ग्रपना ग्राहार बदल देते हैं, जो उनकी ग्रपने पेट से गोल ग्रौर चपटे दोनों ही तरह के कृमियों को निष्कासित करने में सहायता करता है। उनके शरतकालीन ग्राहार में, उदाहरण के लिए, चीड़, देवदारु ग्रौर लार्च की पत्तियों जैसी शंकुल वनस्पतियों की बड़ी मात्रा होती है। इन पत्तियों में जो राल होती है, उसमें रेज़िन वर्गीय पदार्थों, फ़ीटोनसाइड ग्रौर टैनिन की प्रचुरता होती है। इससे कृमि सुन्न हो जाते हैं ग्रौर ग्रनपचे खाने के साथ निष्कासित हो जाते हैं।

पक्षी शंकुल वृक्षों की पत्तियों को ग्रंशतः ही हज़्म करते हैं (१०-१५ प्रतिशत तक)। शेष भाग बड़ी ग्रांत में जमा हो जाता है। जैसे ही पक्षी मोटा खाना खाने लगते हैं, कुछ दिनों के भीतर उनकी ग्रांतों को परजीवी कृमियों से मुक्ति मिल जाती है। बस कुछ फ़ीता कृमियों के सिर ही पक्षियों की ग्रांतों की दीवारों से चिपके रह जाते हैं, जबकि उनके शरीर बाहर धकेल दिये जाते हैं। जीवन के युगों पुराने संघर्ष का नतीजा यह रहा कि जीवित बच पानेवाले पक्षी केवल वे हैं, जो शरद में शंकुल खाद्य खाते थे ग्रौर जिन्होंने यह स्वभाव या प्रतिवर्त ग्रपनी संतति को हस्तांतरित कर दिया।

चिड़ियाघरों में जंगली तीतर और मुर्गियां शरद में चीड़ की पत्तियां खाये बिना ही कृमियों से बच जाती हैं, मगर यह एक बहुत ही लंबी प्रक्रिया है और इसका परिणाम अनिश्चित होता है।

तृणभक्षी स्तनपायी जंतुओं के भी अपने-अपने मौसमी "औषधिक" आहार होते हैं। उदाहरण के लिए, स्तेपियों में गायें तथा अन्य खुरदार जानवर शरद में नागदौना खाते हैं। इस कड़वे पौधे के ऐरामेटिक तेल बहुत ही बढ़िया कृमिनाशक हैं। इस के बिना जानवर सरदियों के अल्प और घटिया चारे पर वसंत तक जी न पाते। इस तरह नागदौना कई जानवरों की जान बचाता है।

एल्क कृमियों को निष्कासित करने के लिए बकबीन नामक एक दलदली पौधा खाते हैं। कई प्रकार के हिरन कुटकी नामक पौधे को पसंद करते हैं, जो घोड़ों के लिए ज़हर होता है।

बालजीवन की विचित्रताएं

तालाब ज़िंदगी से खुदबुदा रहा था, मुर्गाबियां सारे चिड़ियाघर को अपने शोर से गुंजा रही थीं।

मैं अपने एक बाल-जीवविज्ञानी के साथ तालाब के किनारे पर घूम रहा था। अचानक हमारी निगाह पानी में डूबे एक छोटे-से बिल्ली के बच्चे के शरीर पर पड़ी, जिसकी अभी आंखें भी नहीं खुली थीं। वह किनारे के पास ही पेंदे में पड़ा था और पानी में से उस पर सूरज का झिलमिल प्रकाश पड़ रहा था। उसके नन्हे-से शरीर पर शैवाल की हरी परत जम गई थी।

मेरे साथी ने बच्चे को निकाल लिया। उसमें जीवन का कोई भी लक्षण नहीं था और लगता था, जैसे उसे डूबे कई दिन हो चुके हैं।
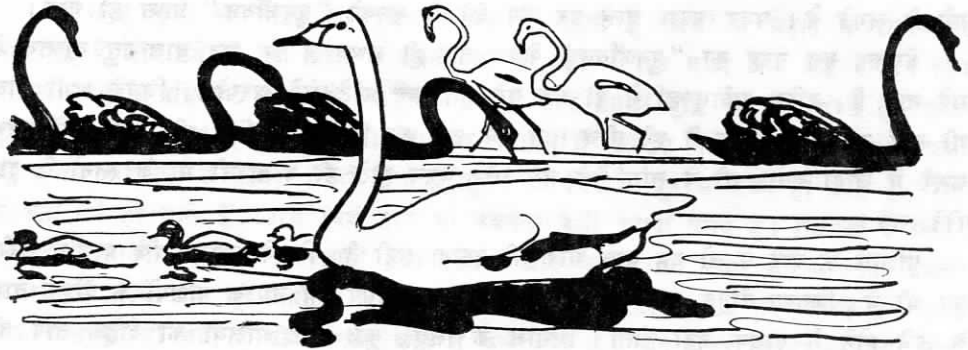
हमारे जांच करते-करते उसकी नाक से पानी बाहर निकल गया और उसका बदन हमारे हाथों में गरमा गया। अचानक हमें लगा कि वह फड़क रहा है...

बिलौटा धीरे-धीरे फिर जीवन पा रहा था।

हमने उसे उसी बिल्ली के सुपुर्द कर दिया, जो कई मुश्कबिलावों को पाल रही थी। उसकी बदौलत बिलौटा जल्दी ही ठीक हो गया और बड़ा होने के बाद वह हमारे एक विज्ञान-कर्मी के घर रहने लगा।

बिलौटा इतनी आसानी से क्यों ठीक हो गया, जो तालाब में बिलकुल पानी की तरह ही ठंडा हो गया था?

इसलिए कि भ्रूण में सभी जंतु एक तरह से अपने सुदूर पूर्वजों के विकास की पुनरावृत्ति करते हैं। अपने प्रारंभिक दिनों में बाल-जंतु वयस्क जानवरों से बहुत भिन्न होते हैं और कुछ मामलों में अपने आदिम पूर्वजों से मिलते-जुलते हैं, जो पशु-विकास की एक निम्नतर मंज़िल का प्रतिनिधित्व करते थे। उदाहरण के लिए, अधिकांश स्तनपाइयों का ३७–३८° सेंटीग्रेड के लगभग स्थिर दैहिक ताप होता है, मगर उनके बच्चे, विशेषकर जो अंधे पैदा होते हैं, अगर उन्हें बाहरी गरमी न मिले (अगर वे अपने जनकों से चिपटकर अपने आपको गरम नहीं करते), तो वे तेज़ी के साथ ठंडे हो जाते हैं। वयस्क कुत्ते की देह को उसके मरे बिना २७° सेंटीग्रेड तक ठंडा करना शायद ही संभव है, मगर नवजात पिल्लों का दैहिक ताप १०° सेंटीग्रेड या उससे भी नीचे ले जाया जा सकता है। वे बिलकुल अकड़ जाते हैं, मगर गरमाने पर फिर जी उठते हैं। हमें ऐसे कई मामलों की जानकारी है, जिनमें जंगली जानवरों के बड़े-बड़े समूहों को इतने नीचे ताप तक ठंडा किया गया था कि वे मृत लगने लगे थे। मगर गरमी से उनमें जीवन लौट आया और बाद में उन्होंने सामान्यरूपेण विकास किया।

एक विशेष ठंडी रात के बाद चिड़ियाघर में सुबह दो यूरोपीय मिंक सरदी से जमकर मर गये से लगते थे। मगर गरम चूल्हे पर रख देने से उनको "पुनर्जीवन" प्राप्त हो गया।

बेशक, इस तरह का "पुनर्जीवन" केवल तब ही संभव है कि जब बाल-जंतु वास्तव में मरे नहीं हैं, बल्कि अतिमूर्च्छा में ही पड़ गये हैं। कई छोटे-छोटे ख़रगोश, जिनके अभी बाल भी नहीं उगे थे, हिमांक से भी नीचे ताप तक ठंडे कर दिये गये। फिर भी, जब उन्हें गरम कमरे में लाया गया, तो वे सांस लेने लगे और गरम होते ही वे अपनी मां के स्तनों से दूध पीने लगे।

पक्षियों के बारे में तो यह बात और भी ज़्यादा सही है, जिनके सुदूर पूर्वज प्राचीन सरीसृप भी थे, जिनका दैहिक ताप स्थिर नहीं होता था। मगर यह वयस्क पक्षियों के दैहिक ताप के ऊंचे होने में बाधक नहीं होता। मिसाल के लिए, कुछ छोटे पक्षियों का दैहिक ताप तो ४४° सेंटीग्रेड तक होता है। लेकिन कई और बातों में पक्षी सरीसृपों से मिलते-जुलते हैं। पक्षियों तथा सरीसृपों, दोनों ही की त्वचा में बस, दुम की जड़ के पास अनुत्रिक ग्रंथि के सिवा स्वेद और वसा ग्रंथियां नहीं होतीं। पक्षियों और सरीसृपों, दोनों ही के मल में यूरिक अम्ल होता है। टिकरी, कैमा और शुतुरमुर्ग़ जैसे कुछ पक्षियों के डैनों पर अभी तक आद्यांगिक नख हैं और सभी पक्षियों के पैरों पर शृंगीय शल्क होते हैं। उन पक्षियों की, जो अंधे और रोमहीन पैदा होते हैं, सरीसृपों से अद्भुत समानता होती है—अगर उनके पास अपने को गरमाने को कुछ भी न हो, तो वे तेज़ी के साथ ठंडे होने लगते हैं और उनमें जीवन का कोई भी लक्षण मुश्किल से ही नज़र आता है। मगर अगर उनकी देखभाल करके उन्हें फिर जिला लिया जाये, तो वे कहीं अधिक सक्रिय हो जाते हैं। उदाहरण के लिए, न० कालाबूख़ोव और न०

रियूमिन नामक दो विज्ञानकर्मियों ने, जो कभी मास्को के चिड़ियाघर के बाल-जीवविज्ञानी मंडल के सदस्य थे, गौरैया के बच्चों को ५° सेंटीग्रेड के ताप तक ठंडा किया।

गौरैयां बिलकुल जमे हुए मुर्दों जैसी नज़र आती थीं, मगर जब उन्हें गरमी दी गई, तो वे जल्दी ही ठीक हो गईं और अपनी नन्ही-नन्ही चोंचें खोलकर खाना मांगने लगीं।

ठंडे दिनों में मुझे अकसर अंडों से अभी-अभी निकली ऐसी कस्तूरिकाएं और तूतियां मिली हैं, जो अपने मां-बाप के डर के मारे घोंसले से भाग जाने के कारण अतिमूर्च्छा में पड़ गई थीं। तथापि इस अस्थायी अवस्था का इन बच्चों पर कोई हानिकर प्रभाव नहीं पड़ता और बाद में वे सदा की भांति हृष्ट-पुष्ट और सक्रिय ही निकलते हैं।

यही बात मुर्ग़ी के चूज़ों के बारे में भी कही जानी चाहिए, जो अंडे से निकलते ही इधर-उधर दौड़ने लगते हैं। उनकी मां चूल्हे का काम करती है, जहां वे ठंडे हो जाने पर अपने को गरमा सकते हैं। मुझे विश्वास है कि तुमने मुर्ग़ी को अहाते में दाना चुगना बंद करके अपने बच्चों को अपने फैले हुए पंखों के नीचे इकट्ठा करते ज़रूर देखा होगा। वहां वह उन्हें अपनी गरम बग़लों से चिपटा लेती है।

इस तरह चूज़ों का दैहिक ताप अकसर बदलता रहता है – अभी वे अहाते में इधर-उधर भाग रहे हैं और ठंडे हैं, तो अभी वे अपनी मां के पंखों के तले गरम और मज़े में हैं। ताप में इस तरह के परिवर्तन चूज़ों को मज़बूत बनाते हैं और उनकी वृद्धि को तेज़ करते हैं। सरीसृपों में भी यही बात देखी जा सकती है। सच तो यह है कि इस मामले में चूज़े अपने जनकों की अपेक्षा सरीसृपों से अधिक मिलते हैं। सरीसृप, जो दिन में धूप से गरम हो जाते हैं, रात में कहीं ठंडे हो जाते हैं, उन्हें स्वयं ताप का बदलना कहीं ज़्यादा पसंद है। मिसाल के लिए, स्थलजीवशालाओं में, जहां हम सांपों, छिपकलियों और कछुओं को रखते हैं, सरीसृप बिजली के बल्बों के नीचे जमा हो जाते हैं और अपने को ३६-३७° सेंटीग्रेड तक गरमा लेते हैं। इसके बाद वे सक्रिय हो जाते हैं और रेंगकर छांह में चले जाते हैं। ताप अगर स्थायी तौर पर ऊंचा हो, तो वे क़ैद में कदाचित ही जी पाते हैं।

पक्षियों की इस विशेषता की जानकारी कुक्कुट-पालन के लिए बड़ी महत्वपूर्ण है। थोड़े ही समय पहले तक बड़े-बड़े कुक्कुट-फ़ार्म अपने चूज़ों को गरम कमरों में रखा करते थे और ताप को घटाते घबराते थे, चाहे उसमें घटा-बढ़ी एक-दो डिग्री सेंटीग्रेड की ही हो। इस तरीक़े से, जिसका अभी भी कुछ कुक्कुट-फ़ार्मों में पालन किया जाता है, चूज़े कमज़ोर और दुबले रहते हैं।

अगर हम यह चाहते हैं कि पशु स्वाभाविक रूप से विकास करें, तो हमें इस बात की तरफ़ ध्यान देना चाहिए कि युगों-युगों के दौरान उनका शरीर नियत पर्यावरण के प्रति किस तरह अनुकूलित हुआ है।

अजगरों की भूख

अजगर संसार के सबसे बड़े सांपों में एक है। हमारे चिड़ियाघर में भारत से इसका एक शानदार नमूना आया था, जो लगभग ८ मीटर लंबा और १२० किलोग्राम भारी था।

इतने विराट सांपों की शक्ति अपार होती है। वे अपने शक्तिशाली शरीरों को अपने शिकार के चारों तरफ़ लपेट लेते हैं और फ़ौलादी जकड़ में उसे मसल देते हैं।

इस भयंकर आलिंगन से जानवर का दम घुट जाता है और अजगर की जकड़ तभी ढीली होती है, जब शिकार निष्प्राण हो जाता है। इसके बाद अजगर अपने कुंडल खोलता है और अपने शिकार के सिर से शुरू करके उसे निगल जाता है। अगर शिकार काफ़ी बड़ा है, तो सांप को महीना भर या उससे भी ज्यादा समय तक भूख नहीं लगेगी।

अजगर अपने शिकार की हड्डियां कभी नहीं तोड़ता, यद्यपि वह आसानी से ऐसा कर सकता है। अजगर की यह विशेषता अनुकूलन की उस लंबी अवधि के कारण है, जिसमें खाने के सर्वोत्तम रूपों ने अपने आपको स्थापित किया था। बात यह है कि टूटी हुई हड्डियां शिकार की खाल से बाहर उभरकर खाने में बाधा डालेंगी।

अजगर जिस दिन चिड़ियाघर लाया गया था, उसके शरीर के सबसे बड़े हिस्से की मोटाई कोई ३० सेंटीमीटर थी, मगर भरपेट भोजन के एक-दो दिन बाद वह गैसों के कारण फूल गया।

चिड़ियाघर में हमारे अजगर को सूअर के बच्चे और ३० किलो या उससे भी ज्यादा वज़न के सूअर खाने के लिए दिये जाते थे, मगर जिस तरह वह अपना मुंह फैलाता था, उससे तो यही लगता था कि वह कहीं बड़े जानवरों को भी निगल सकता है।

एक बार हमारा एक अजगर रेंगकर अपने पड़ोसियों – मगरों – के पास चला गया। वे सभी बड़े-बड़े वयस्क मगर थे। अजगर ने उनमें से एक को मसलकर निगल लिया। हममें से

कुछ लोग हैरत में आ गये। हमारे डाक्टरों ने तो कहा कि शल्यचिकित्सीय हस्तक्षेप किया जाना चाहिए। मगर अजगर को अपना शिकार हज़्म करने में कुछ ही दिन लगे और मल में बस ऐसी अपच्य चीज़ें ही निकलीं जैसे नाखू़न और शल्क।

लेकिन अजगर आम तौर पर सूअर ही खाता था और उन्हें आसानी से पचा लेता था। अगर बिनपचा कुछ निकलता था, तो बस बाल, खुर और दांतों का एनैमल।

पाचन की रफ़्तार पूरी तरह से इस बात पर निर्भर करती है कि स्थलजीवशाला में कितनी गरमी है, क्योंकि सांपों, मगरों, छिपकलियों और कछुओं का स्थिर दैहिक ताप नहीं होता।

अजगर ज़हरीला सांप नहीं है। नाग और फ़ुरसा जैसे विषैले सांप अपने शिकार को उसके खू़न में अपने विषदंतों की विशेष ग्रंथियों में से ज़हर डालकर मारते हैं। ये विषदंत ऊपरी दांतों के जोड़े से विकसित हुए हैं। कभी-कभी सांप का शिकार भागने में कामयाब हो जाता है, मगर फिर भी ज़हर के कारण मर जाता है। लेकिन वह चाहे जहां भी भागकर जाये, सांप निरपवाद रूप से अपने शिकार को ढूंढ निकालता है।

वह डंसे हुए जानवर के पदचिन्हों पर सरकता चला जाता है और रास्ते में ज़मीन और पौधों को अपनी लंबी, दो शाखावाली जीभ से छूता चला जाता है। सांप की जीभ एक बहुत ही संवेदी अंग है और इस बात की कसर को पूरा कर देती है कि सांप के गंधेंद्रिय नहीं होती।

धामिन सांप, जो चिड़ियाघरों में गरमियों में खुले बाड़ों में रहते हैं, अथक शिकारी होते हैं। वे घास में मेंढकों का इतना पीछा करते हैं कि वे बेचारे इतने थक जाते हैं कि और कूद नहीं सकते और केवल सरक ही पाते हैं।

किताबों में अकसर यह पढ़ने को मिलता है कि सांप अपने शिकार की तरफ़ स्थिर आंखों से देखकर उसे "सम्मोहित" कर लेता है। यह एकदम झूठी बात है। अजगर खुरदार जानवरों, कृन्तकों तथा अन्य पशुओं को अपनी शल्कीय खाल की अचल चकाचौंध से आकृष्ट करते हैं। अपने शिकार को देख लेने के बाद अजगर कुंडली मारकर बैठ जाता है, और धीरज के साथ उसके पास आने की प्रतीक्षा करता है।

जिज्ञासु पशु इस अजीब-सी चीज़ के पास आता है और जब वह काफ़ी पास आ जाता है, तो अजगर अपने शिकार को अपने जकड़ में कस दाब लेता है और अपनी पेशियों की ऐंठनों में उसे तत्क्षण निश्चल कर देता है।

सांप ने अपना शिकार चुना कि उसका बच पाना असंभव हो जाता है। तथापि सांप हमला केवल तब ही करता है, जब वह भूखा होता है। यह इस बात का सबूत है कि दूसरे जानवरों ने इस भयंकर दुश्मन के ख़िलाफ़ अपनी लड़ाई से कुछ भी नहीं सीखा है।

बंदर ज़्यादा खु़शक़िस्मत हैं और वे अजगरों के निर्मम आलिंगनों से बच पाने में अधिक

सफल रहते हैं। इसलिए यह कोई अचरज की बात नहीं है कि इस तरह की मुठभेड़ों ने उनमें एक विशेष सतर्कता पैदा कर दी है। ऊंचे से ऊंचा पेड़ भी सांपों से कोई आश्रय प्रदान नहीं करता, जिनका अप्रिय स्वभाव यह है कि वे रात को ही हमले पर निकलते हैं, जब बंदर सोये होते हैं। चिंपांज़ी, जो पेड़ों की ऊंची टहनियों पर से जंगल के मालिकों को चिढ़ाता है, सांप को देखने के साथ दहलकर भाग जाता है।

यह प्राकृतिक वरण का और सांपों के साथ, जो बंदरों के अकेले सचमुच ख़तरनाक दुश्मन हैं, मुठभेड़ों से प्राप्त वैयक्तिक अनुभव का परिणाम है। उष्णकटिबंधीय अफ़्रीका के जंगलों में, जहां भांति-भांति के सांपों की भरमार है, चिंपांज़ी खोखले पेड़ों की बड़ी सावधानी के साथ जांच करेगा, क्योंकि वह इस बात को भली भांति जानता है कि हो सकता है कि उनमें चिड़ियों के अंडेवाले घोंसले की जगह उसका विषैले सांप से ही सामना हो जाये।
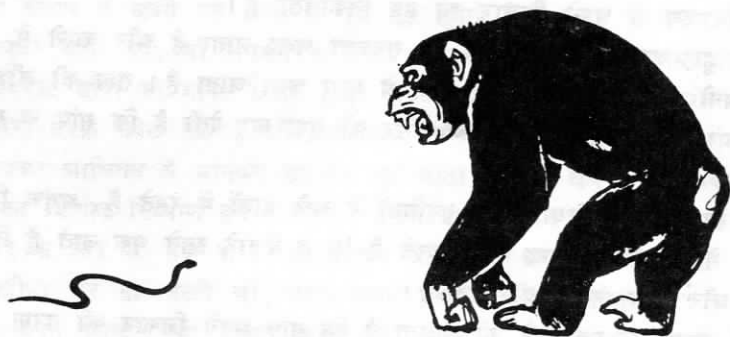
कुछ वर्ष हुए, विदेश से चिंपांज़ियों का एक जोड़ा मास्को के चिड़ियाघर में आया। नर का नाम था हांस और मादा का लीज़ा।

वे एक ही पिंजरे में रहते थे। हांस बड़ा हट्टा-कट्टा और लड़ाकू स्वभाव का जानवर था। किसी को भी दोनों में से किसी के भी पास जाने की हिम्मत नहीं होती थी। एक बार हमें उन्हें दूसरे पिंजरे में ले जाने की ज़रूरत पड़ी और हमें यह नहीं मालूम था कि इस काम को कैसे करें। पहले हमें उन्हें एक चलते-फिरते पिंजरे में स्थानांतरित करना था और फिर उनके नये निवास में ले जाना था।

हमने चलते-फिरते पिंजरे के दरवाज़े को बड़े पिंजरे के दरवाज़े से भिड़ा दिया और फिर जोड़े को दूसरे पिंजरे में जाने के लिए फुसलाना शुरू किया। लीज़ा तो आसानी से चाल में

आ गई, मगर हांस ने टस-से-मस होने से भी इन्कार कर दिया। आख़िर वह ग़ुस्से में आ गया और चीख़ता हुआ इधर-उधर दौड़ने लगा।

क्रोधोन्मत्त जानवर बिलकुल बेक़ाबू हो गया। हमने उस पर ठंडे पानी की धार छोड़ी, मगर इससे बात बनती तो क्या, और बिगड़ गई। अब लीज़ा भी चलते-फिरते पिंजरे से हांस के पास लौट आई।

अब दोनों ही ऐसे जम गये कि हिलें ही नहीं। हांस तो और भी ज़्यादा मतवाला हो गया।

आख़िर बंदर विभाग के प्रमुख को एक बात सूझी।

"अरे, जल्दी से एक विषहीन धामिन सांप तो लाओ," उसने एक बाल-जीवविज्ञानी से कहा।

कुछ ही मिनटों में सांप मौक़े पर पहुंच गया। जैसे ही बेकाबू हांस की नज़र पिंजरे के फ़र्श पर पड़े सांप की काली देह पर पड़ी कि उसका ग़ुस्सा डर में बदल गया। वह आतंकित हो गया। उसकी आंखें फटी-सी रह गईं। पहले तो उसने रक्षात्मक रुख़ अपनाया, मगर फिर इधर-उधर असहायतापूर्वक देखते हुए पीछे हटने लगा।

सांप और पास आ गया। लीज़ा चलते-फिरते पिंजरे के सबसे दूर कोने में गठरी बनी बैठी थी। आख़िर हांस भी लपककर उसी में जा घुसा। हमने दरवाज़ा बंद किया और चिंपांज़ियों को वहां से ले गये।

हांस दिनभर डर और घबराहट के मारे कांपता रहा, जिसका कारण था वही सांप, जिसे उसने आज देखा था।

बेचारा हांस! उसे यह कैसे बताया जाता कि वह सांप कोई ज़हरीला नाग नहीं था और अगर किसी को नुक़सान पहुंचा सकता था, तो बस मामूली मछलियों या मेंढकों को ही!

शिकार और गंध

ख़रगोश जैसे ही पैदा होते हैं और उनकी मां चाट-चाटकर उन्हें साफ़ कर देती है कि वे उसके स्तनों की तरफ़ लपकते हैं। भरपेट दूध पीने और कुछ आराम के बाद वे इधर-उधर भाग जाते हैं और फिर दो, बल्कि तीन-चार दिन तक भी घास में निश्चल बैठे रहते हैं। इस अवधि में उन्हें किसी भोजन की आवश्यकता नहीं होती। उनकी मां के दूध का पहला पान, जिसमें गाय के दूध से छः गुनी वसा होती है, उन्हें ज़िंदा रखता है।

जब शिशु-ख़रगोश निश्चल होते हैं, तब उनकी मां भी उन्हें नहीं ढूंढ सकती। तुम पूछ सकते हो, "इसका क्या कारण है?"

शिशु-ख़रगोश में एक विशेष चीज़ होती है, जो उनकी उनके शत्रुओं से रक्षा करती है—वह है उनकी त्वचा में स्वेद-ग्रंथियों का न होना। पसीने का स्राव करनेवाली ग्रंथियां सिर्फ़ एक ही जगह होती हैं—उनके पंजों के तलुओं में। जब ख़रगोश चलता है, तब वह अनिवार्यतः गंधयुक्त पदचिन्ह छोड़ता चला जाता है, जिनका उसका शत्रु अनुसरण कर सकता है। जब ख़रगोश अपने पंजों को ज़मीन से लगाये बिलकुल एक ही जगह बैठा रहता है, तब न तो कुत्ते और न दूसरे जंगली जानवर ही उसका पता चला सकते हैं। ख़रगोश का कुत्ते जितना ही ज़्यादा पीछा करते हैं, उसकी स्वेद-ग्रंथियां उतना ही ज़्यादा पसीना छोड़ती हैं और उसकी गंध भी उतनी ही ज़्यादा तेज़ होती जाती है। यही कारण है कि शिकारी कुत्तों का झुंड उस एक ही ख़रगोश का पीछा करता चला जायेगा, चाहे उसके पदचिन्ह घबराये हुए दूसरे ख़रगोशों द्वारा कटे हुए ही क्यों न हों।

शिशु-खरगोश के जीवन के प्रारंभिक दिनों में उसकी गंध मलोत्सर्ग के पूर्ण अभाव के कारण और भी कमज़ोर हो जाती है। ज़ाहिरा तौर पर उसका शरीर सारे दूध को जज़्ब कर लेता है और वसाओं के विखंडन के समय जो पानी पैदा होता है, वह सांस के साथ बाहर चला जाता है।
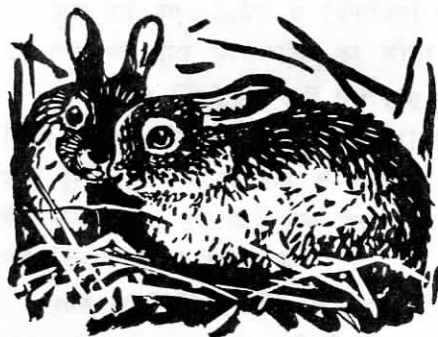
चिड़ियाघर में हम पट्टे से बंधी एक पालतू लोमड़ी को घास में बैठे कुछ शिशु-ख़रगोशों के पास से बार-बार ले गये, लेकिन लोमड़ी उनकी गंध नहीं ले पाई, यद्यपि उसकी घ्राणेंद्रिय अत्यंत प्रखर होती है। वह लोमड़ी ख़रगोश की गंध पकड़ते ही उत्तेजित हो जाती थी और अपने पट्टे से छूटने की कोशिश करती थी।

शिशु-ख़रगोशों की तीसरे या चौथे

दिन भूख लगती है और वे अपने छिपने की जगह से निकल आते हैं। उन्हें सिर्फ़ उनकी मां ही नहीं, बल्कि किसी भी दूधदार मादा-ख़रगोश द्वारा आसानी से ढूंढा जा सकता है। स्तनपान के बाद शिशु-ख़रगोश फिर छिप जाते हैं। आठवें या नवें दिन उनके दांत निकल आते हैं और वे कोमल घास कुतरना शुरू कर देते हैं। शिशु-ख़रगोशों की यह विशेषता उन्हें लोमड़ियों तथा अन्य जानवरों के जबड़ों से बचाती है।

यद्यपि ख़रगोश के पंजों की स्वेद-ग्रंथियों के स्राव दुश्मनों को उसकी टोह दे देते हैं, मगर वे पीछा किये जाने के समय उसकी सहायता भी करते हैं, क्योंकि वे उसके तलुओं के मोटे बालों पर बर्फ़ या गीली मिट्टी को नहीं जमने देते।

इस समय चूंकि हम पदचिन्हों और खोज की ही बात कर रहे हैं, इसलिए कुछ शब्द लोमड़ी के पदचिन्हों के बारे में भी बता दें। हर कोई शिकारी जानता है कि लोमड़ी के पदचिन्ह कुत्ते के पैरों से बने निशानों से बहुत भिन्न होते हैं। कुत्ते का पंजा बर्फ़ पर स्पष्ट छाप छोड़ता है, जिसमें नंगी, गद्दीदार पादांगुलियों की आकृति एकदम साफ़ होती है। लोमड़ी का पदचिन्ह इतना स्पष्ट नहीं होता, क्योंकि उसके पंजों के तलुए लंबे बालों से ढंके होते हैं। तो इस तरह सरदियों में लोमड़ी एक तरह "नमदेदार जूते" पहनकर घूमती है।

इन जूतों की बदौलत लोमड़ी के पैरों के नीचे की सख़्त बर्फ़ के टूटने पर वे घायल नहीं होते। मगर उसी खेत पर भागता कुत्ता अपने पदचिन्हों में ख़ून के धब्बे छोड़ता चला जायेगा। लेकिन ऐसे भी वक़्त आते हैं, जब जीवन लोमड़ी के लिए भी मुश्किल हो जाता है। अगस्त के आख़िर और सितंबर के प्रारंभ में लोमड़ी के पंजों के लंबे बाल झड़ जाते हैं और उसकी स्वाभाविक तेज़ी जाती रहती है। नये बाल शुरू-शुरू में मोटे और सख़्त होते हैं और उनसे पंजों में बहुत तकलीफ़ होती है। लोमड़ी ऐसे चलती है, मानो अंगारों पर चल रही हो, वह ज्यादा भाग नहीं सकती और मामूली कुत्तों तक की पकड़ में आ जाती है।

बालों के लंबे होने और पंजों को ढंकने में कोई तीस दिन लगते हैं और तब जाकर लोमड़ी के जीवन की यह ख़तरनाक अवधि ख़त्म होती है।
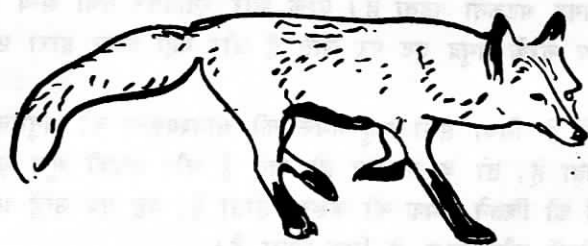
नमक सबको चाहिए

मास्को के पासवाले इलाक़ों के पक्षी अक्सर चिड़ियाघर आते रहते हैं। इनमें अधिकतर तो गौरैयां ही होती हैं, मगर गोल्डफ़िंच, बुलफ़िंच, सिस्किन और लिनेट के झुंड भी देखे जाते हैं। ये सभी पक्षी हमारे पशुओं की नांदों से, ख़ासकर उनमें पड़े नमक के बड़े-बड़े ढेलों से आकर्षित होकर वहां आते हैं।

प्रकृति उतनी सुव्यवस्थित नहीं है, जितनी हम उसे समझते हैं और पौधों पर जीनेवाले अधिकांश पशु नमक के लिए लालायित रहते हैं। मैंने रेगिस्तानों में अक्सर स्थल कच्छपों को झाऊ की पत्तियों से नमकीन ओस चाटते या खारी मिट्टी को चाटते देखा है। गायों, भेड़ों, बकरियों और घोड़ों को जब भी मौक़ा मिलता है, वे भूखों की तरह नमक खा जाते हैं। रेनडियर जो सरदियां नमक के बिना बिताते हैं, गरमियों में नमकीन ज़मीन तलाश करते हैं और उनमें गहरे छेद कर लेते हैं।

चिड़ियाघर में मैंने एक शुतुरमुर्ग़ के आगे थोड़ा-सा नमक रख दिया। उसने और उसके साथियों ने उसे फ़ौरन चट कर डाला और इसके बाद जब भी मैं उनके बाड़े के पास से गुज़रता था, वे उत्तेजना प्रकट करते थे।

गिलहरियों, ख़रगोशों, खेतमूसों तथा कई और जानवरों को नमक की ज़रूरत पड़ती है और वे इस बात को जानते हैं।

अक्सर जंगली जानवरों को अपने ख़ून को उसके लिए आवश्यक नमक का प्रदाय करने के लिए जगह से जगह भटकना पड़ता है। एल्क और रेनडियर तथा अन्य जानवर कभी-कभी लंबी-लंबी दूरियां तय करके समुद्र तट पर जाते हैं और वहां ज्वार द्वारा छोड़े खारे झाग को चाटते हैं।

मांसभक्षी पशुओं के सिवा सभी पशु नमक की आवश्यकता को अनुभव करते हैं। अगर नमक का अभाव होता है, तो वे कमज़ोर हो जाते हैं और उनकी भूख ख़त्म हो जाती है।

मांसभक्षी पशुओं को जितने नमक की ज़रूरत होती है, वह सब उन्हें अपने खाये तृणभक्षी पशुओं के मांस, हड्डियों और ख़ून से मिल जाता है।

इसके विपरीत तृणभक्षी पशु अपने द्वारा खाये जानेवाले पौधों में विद्यमान सोडियम क्लोराइड की नगण्य मात्रा पर निर्भर करते हैं। इन पौधों की जड़ें मिट्टी से पोटेशियम के लवणों को चूस लेती हैं (तुम्हें याद होगा कि किसान अपने खेतों को पोटेशियम लवणों से उर्वर बनाते हैं, न कि सोडियम लवणों से)। तृणभक्षी पशु खारी ज़मीन पर जाते हैं, जहां वे सोडियम क्लोराइड या सोडियम सल्फ़ेट चाटते हैं। सोडियम के लवण उनके रुधिर को पोटेशियम के आधिक्य से मुक्त कर देते हैं, जो मूत्र के रूप में शरीर से निष्कासित हो जाता है।

इसी कारण पशु-संरक्षणालयों में रखी नमक की नांदें सिर्फ़ एल्कों और चिकारों को ही नहीं, बल्कि ख़रगोशों, गिलहरियों और चूहों तथा उत्तरी प्रदेशों में हवाई गिलहरियों को भी आकर्षित करती हैं। इन सभी को नमक की ज़रूरत है, क्योंकि उसके बिना उनके रुधिर की बनावट असामान्य हो जाती है और उनके आमाशय-रस में हाइड्रोक्लोरिक अम्ल नहीं रहता। नमक के बिना वे कमज़ोर हो जाते हैं और आसानी से विभिन्न रोगों के शिकार हो जाते हैं। इसलिए इसमें अचरज की क्या बात है कि नमक उन्हें इस तरह आकर्षित करता है।
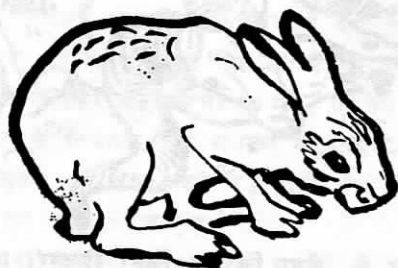
ख़तरे के संकेत

चिड़ियाघर के ऊपर थोड़ी ही ऊंचाई पर उड़ता हवाई जहाज़ गरज रहा है, जंगले के पीछे ही ट्राम धड़धड़ाती जा रही है, दिन भर कारों के हॉर्न बजते रहते हैं। मगर इस तमाम शोर का चिड़ियाघर के निवासियों पर कोई असर नहीं पड़ता। जानवर जल्दी ही शहर के शोर-शराबे और भांति-भांति की अनजानी तेज़ और अप्रत्याशित आवाज़ों के अभ्यस्त हो जाते हैं। मगर यह अद्भुत बात है कि जानवर चाहे चिड़ियाघर में कितने ही दिन क्यों न रह लिये हों या चाहे वे वहीं पैदा भी क्यों न हुए हों, अपने प्राकृतिक पर्यावरण में जिन आवाज़ों को वे आम तौर पर आनेवाले ख़तरे के साथ जोड़ा करते हैं, वे उन्हें उत्तेजित किये बिना नहीं रहतीं।

कौए को देखकर हमारे पक्षियों के चूज़े उत्तेजित नहीं हो जाते, लेकिन अगर कौआ घबरा-

हट में कांव-कांव करने लगता है, जैसा कि वह किसी शिकारी पक्षी से अपना बचाव करते समय करता है, तो काले और भूरे तीतरों तथा बतख़ों और जंगली मुर्ग़ियों के चूज़े फ़ौरन छिपने के लिए भाग जाते हैं। यद्यपि कौआ स्वयं कुछ चूज़ों को चट कर जाता है, मगर अपने आगाही के शोर से, जो पखेरुओं को इस बात की चेतावनी दे देता है कि पास ही कोई भेड़िया, लोमड़ी या बाज़ मंडरा रहा है, कई और पक्षियों की जानें बचा देता है। मुटरी की असंदिग्ध आगाही की चीख़ को सुन बड़े-बड़े जानवर भी छिपने के लिए लपकने लगते हैं, क्योंकि यह आम तौर पर मनुष्य की मौजूदगी की सूचक होती है।

रामगंगरा की हलकी टिस्स-टिस्स भी एक चेतावनी है और इसको सुनने के साथ जंगल के सभी गानेवाले पक्षी और जंगली ग्राउज़ तक अपनी-अपनी डालों पर निश्चल हो दुबककर बैठ जाते हैं, क्योंकि वे सब जानते हैं कि रामगंगरा ने किसी बाज़ या बहरी को देख लिया है।

रामगंगरा चित्तीदार कठफोड़वे की भी जान बचाता है, जिसकी ग्रांखें बस ग्रपने ही काम पर लगी होती हैं, क्योंकि रामगंगरा ग्राम तौर पर कठफोड़वे के "लोहारख़ाने" के ग्रासपास ही मंडराता रहता है।

ग्रहाते के ऊपर, जहां बेसमझ चूज़े बेफ़िक्री के साथ दाना चुगते घूमते रहते हैं, ग्रगर चील मंडराने लगती है, तो मुर्ग़ा ख़तरे की चेतावनी देता है, जिसे मुर्ग़ी भी गुंजारने लगती है ग्रौर रोएंदार पीले चूज़े फ़ौरन या तो घास में ही छिप जाते हैं, या ग्रपनी मां के पंखों के नीचे जा दुबकते हैं।

वह क्या चीज़ है, जिसके कारण चूज़े छिपने का ठौर देखने लगते हैं, यद्यपि उन्होंने ख़ुद कभी किसी शिकारी चिड़िया के पंजों का ग्रनुभव नहीं किया है?

हज़ारों-लाखों वर्षों से पक्षियों को ग्रपने दुश्मनों से ग्रपनी जानें बचानी पड़ी हैं – चाहे वे ग्रन्य पक्षी हों या जानवर – ग्रौर केवल वही पक्षी बच पाये, जिन्होंने पूर्वगामी पीढ़ियों से विभिन्न उपयोगी विशेषताएं विरासत में ग्रहण की थीं। चूज़ों के मामले में यह विशेषता वह प्रतिवर्त है, जो उन्हें ग्रपनी मां की ग्रागाही के साथ छिपने के लिए प्रेरित करता है। ग्रकादमीशियन इवान पाव्लोव ने इन प्रतिवर्तों को निरुपाधिक या ग्रननुकूलित प्रतिवर्त कहा है, क्योंकि ये ग्रनिवार्यतः कुछेक परिस्थितियों में होते हैं ग्रौर ग्राचरण का एक ग्रंतर्जात रूप हैं।

एक बार हमने ग्रपने बाल-जीवविज्ञानियों को यह प्रयोग करके दिखलाया। वे एक इन्क्यूबेटर के सामने खड़े थे, जिसमें ग्रास्ट्रेलियाई शुतुरमुर्ग़ एमू के ग्रंडे सेये जा रहे थे। ग्रंडे इन्क्यूबेटर में ४७ दिन से पड़े हुए थे ग्रौर दो दिन के भीतर उनमें से एमू के चूज़े निकलनेवाले थे। ग्रंडों को ग्रपने कानों से लगाकर बच्चे चूज़ों के मंद, एकरूप सांस को सुन भी सकते थे।

हमने ग्रंडों को इन्क्यूबेटर से निकाला ग्रौर समतल कांच पर रख दिया। हम उनके भीतर किसी चीज़ को ग्रस्पष्टतः फड़कते हुए देख सकते थे। इसके बाद मैंने नर शुतुरमुर्ग़ की ग्रागाही की पुकार की नक़ल करते हुए कहा, "ब्र-र्-र्!"

उसी क्षण ग्रंडे इधर-उधर लुढ़कने लगे। नन्हे एमुग्रों ने ग्रपने ग्रंडों के भीतर ही "भागना" शुरू कर दिया था।

"लेकिन इन्होंने ग्रपने मां-बाप की ग्रावाज़ कभी सुनी ही नहीं!" बच्चों ने हैरानी में कहा। "इन्हें यह कैसे पता चला कि यह ख़तरे का संकेत है?"

"यही बात है," मैंने जवाब दिया। "ख़तरे के संकेत को सुनकर पक्षियों के चूज़े ग्रगर छिपने की कोशिश करते हैं, तो इसलिए नहीं कि उन्हें मालूम है कि दुश्मन के पंजे कैसे होते हैं। ग्रभी उनमें सौपाधिक या ग्रनुकूलित प्रतिवर्त पैदा नहीं हुए हैं। ख़तरे के निशान का प्रतिवर्त एक ग्रंतर्जात, निरुपाधिक प्रतिवर्त है, जो पीढ़ी से पीढ़ी को मिलता जाता है। यह एमू के जीवित बच पाने के लिए ग्रावश्यक है ग्रौर यह चूज़ों में प्राकृतिक वरण द्वारा विकसित होनेवाली एक रक्षात्मक प्रतिक्रिया है।"

,पर जिस प्रयोग का वर्णन किया है, उसे कोई भी साधारण मुर्ग़ी के अंडों के साथ कर सकता है, बशर्ते कि चूज़े एक-दो दिन के भीतर ही अंडों से निकलनेवाले हों और ख़तरे का संकेत वैसा ही हो, जैसा मुर्ग़ी देती है। नतीजा बिलकुल यही निकलेगा।

ख़तरे के संकेत की यह प्रणाली समूहों में रहनेवाले कई और जानवरों पर भी लागू होती है। मैं कुछ मिसालें और देता हूं।

एक प्रकृतिविद और शिकारी ने शिंगशामों की आदतों के अध्ययन में काफ़ी समय लगाया। एक शक्तिशाली दूरबीन की सहायता से उन्होंने उन्हें घास कुतरते और धूप सेंकते देखा। फिर उन्होंने देखा कि बड़ी-बड़ी उरियलों का एक झुंड उसी जगह आ गया है। अचरज की बात थी कि शिंगशामों ने उनकी तरफ़ ज़रा भी ध्यान नहीं दिया। उरियलें बिलकुल उनके बीच में चली आईं और अपने सिरों को अपने भारी-भारी सींगों के सहारे, जिनका वज़न लगभग २०-२२ किलो होता है, ज़मीन पर टिकाकर लोटकर सोने लगीं। आम तौर पर ये उरियलें कभी नहीं सोतीं—वे बीच-बीच में अपने कान खड़े करते हुए, इधर-उधर सिर घुमाते हुए बेचैनी के साथ कुछ देर की झपकी ही लेती हैं और ज़रा-ज़रा सी देर के बाद जाग जाती हैं। लेकिन आज वे बेफ़िक्री-से सो रही थीं।

आख़िर प्रकृतिविद अपने प्रेक्षण-स्थान से निकल आये। शिंगशामों ने उन्हें देखते ही हवा को तीखी चीख़ों से भर दिया और सारी ही बिरादरी इस शोर को गुंजित करने लगी। इस ख़तरे के संकेत को सुनते ही उरियलें उछल खड़ी हुईं और लपककर पहाड़ी पर जा चढ़ीं। लगता है कि इन जानवरों को शायद ही कभी आराम से सोने का मौक़ा मिल पाता है, क्योंकि भेड़िये, साह (बर्फ़ीले तेंदुए) तथा अन्य जानवर उन पर हमला करते रहते हैं। वे केवल तभी निश्चिंत हो सकते हैं, जब वे शिंगशामों के समूह में होते हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि ये पहरेदार उन्हें ख़तरे की चेतावनी दे देंगे।

एक शाम को मैंने कस्तूरे की घबराहट भरी पुकार सुनी—"चें-चें-चें" करके उसने सारे जंगल को आगाह कर दिया कि कोई ख़तरा धीरे-धीरे पास आ रहा है। मैंने बिना आवाज़ किये जल्दी से एक उपयुक्त जगह तलाश की और छिपकर घात में बैठ गया। हवा इस ख़त्म न होनेवाली "चें-चें-चें" की तरफ़ से आ रही थी, जो लगातार तेज़ होती जा रही थी। मैं एक रेडब्रेस्ट पक्षी की नाराज़ी भरी "तिक-तिक" भी सुन सकता था। आख़िर मैंने एक भेड़िये को सावधानी से इधर-उधर देखते लपकते जाते देखा। उसके पीछे-पीछे डाल से डाल पर फुदकते पक्षी भी जा रहे थे। मेरी रायफ़ल से निकली एक गोली ने जंगल के इस लुटेरे का काम तमाम कर दिया और पक्षियों का चहचहाना भी ख़त्म हो गया।

रेगिस्तान का जहाज़

ऊंट को "रेगिस्तान का जहाज़" उपनाम इसलिए मिला कि सदियों तक वही एक ऐसा जानवर था, जो लोगों को असीम रेगिस्तानों की निर्जल रेत के पार ले जा सकता था।

ऊंट एक अद्‌भुत सहन शक्तिवाला जानवर है। जब उसे खाने के लिए अच्छा चारा मिलता है, तब वह अपने कोहान में ज़बरदस्त मात्रा में वसा एकत्र कर लेता है और इसके बाद वह रेगिस्तान में दस दिन या उससे भी ज़्यादा बिना खाये या पिये रह सकता है। उसका कोहान एक तरह का गोदाम है, जिसमें २०० किलो से ज़्यादा वसा जमा हो सकती है।

हो सकता है कि काफ़िला पूरे हफ़्ते भर चलता चला जाये, मगर ऊंटों को पीने के लिए एक बूंद पानी भी न मिले। ऊंट अथक रूप से, प्यास या क्लांति का अनुभव किये बिना चलता जाता है, मगर उसका कोहान दिन-प्रति-दिन छोटा होता जाता है। बहुत समय तक लोग यह नहीं समझ पाये कि वह क्या चीज़ है, जो ऊंट को इतना श्रम सहनेवाला बना देती है। इसलिए ऊंट के बारे में कितने ही क़िस्से गढ़ लिये गये। यहां तक कहा जाता था कि जब ऊंट को यह पता चलता है कि उसे लंबे सफ़र पर जाना है, तो वह बड़ी मात्रा में पानी पीकर उसे अपने पेट के पहले दो ख़ानों की थैलियों में जमा कर लेता है। बेशक, इसमें सच्चाई का लेश मात्र भी नहीं है। मध्य एशिया के रेगिस्तानों में जीवन का अध्ययन करते और अकसर काफ़िलों के साथ सफ़र करते हुए मैंने कई ऊंटों की शव परीक्षा की, मगर मुझे उनके आमाशयों में जानवरों में आम तौर पर पाये जानेवाले कीटाणुओं और जीवाणुओं से भरपूर एक कड़वे द्रव के अलावा और कुछ नहीं मिला।

"मगर ऊंट को पानी कहां से मिलता है?" हैरान पाठक पूछेंगे। यह पानी वह अपने

कोहान से, भोजन या पानी के बिना अपनी लंबी याता के दौरान वसाओं के अपघटन के उत्पादों से प्राप्त करता है। इस प्रकार उत्पन्न पानी वज़न में वसा से ज़्यादा होता है, क्योंकि अपघटन के उत्पादों में फेफड़ों के ज़रिये सांस में खींचे आक्सीजन द्वारा संवृद्धि की जाती है। अगर हम सामान्य बकरे की चरबी लें, तो पायेंगे कि १०० भाग चरबी के अपघटन से ११२ भाग पानी और १८२ भाग कार्बोनिक अम्ल पैदा होता है। इससे तुम समझ जाओगे कि काफ़िले के साथ जलती रेत पर अपनी लंबी याताओं के समय वसा किस तरह ऊंट को ज़िंदा रखती है।

ऊंट के आमाशय के पहले दो ख़ानों की "थैलियों" और "कूपों" में अल्प माता में सदैव रहनेवाला कड़वा द्रव ऊंट की देह द्वारा उपयोग में लाये गये पानी का किसी भी तरह विकल्प नहीं होता, बल्कि एक किण्व या ख़मीर का ही काम देता है, जिसमें कीटाणु और जीवाणु

निवास करते हैं। ये सूक्ष्मजीव ऊंट द्वारा खाये जानेवाले भोजन में ख़मीर पैदा कर जुगाल की उत्पत्ति को तेज़ कर देते हैं। कीटाणु और जीवाणु बहुत बड़ी संख्या में वृद्धि करते हैं। जुगाल के मुंह में पहुंच जाने के बाद अन्य जुगाली करनेवाले पशुओं की ही भांति ऊंट भी उसे आमाशय के चौथे—रेनन—कक्ष में पचाता है और इस तरह अपनी ज़रूरत का ऐल्बुमिन प्राप्त करता है।

ऊंट ने हज़ारों साल की अवधि में अपने को रेगिस्तान की कठिन परिस्थितियों के अनुकूल बना लिया है।

उदाहरण के लिए, ऊंट के पैरों तथा शरीर के अन्य भागों पर बड़े-बड़े घट्ठे होते हैं, जिनकी उन घट्ठों से कोई समानता नहीं होती, जो तंग जूते पहनने के कारण हमारे पैरों में

हो जाते हैं। रेगिस्तानी सूरज की किरणों से रेत इतनी गरम हो जाती है कि कोई भी पशु उस पर नहीं लेट सकता। मगर ऊंट के घट्ठे उसे जलने से बचा लेते हैं।

दुंबा-भेड़ें भी रेगिस्तान में ख़ासे लंबे समय तक बिना खाने या पानी के रह सकती हैं। उन्हें अपनी ज़रूरत का सारा पानी अपनी मोटी दुमों से मिल जाता है। दूसरे पशुओं, मिसाल के लिए रेगिस्तानी हिरनों को ज़्यादा मुश्किल का सामना करना पड़ता है। उनको जो अकेली चीज़ बचा सकती है, वह है उनकी तेज़ चाल। चश्मे से पानी पीने या नख़लिस्तान में चरने के लिए ये पशु दर्जनों किलोमीटर का फ़ासला तय करते हैं और पानी तथा भोजन की तलाश में रेगिस्तान में दूर-दूर तक जाते रहते हैं।
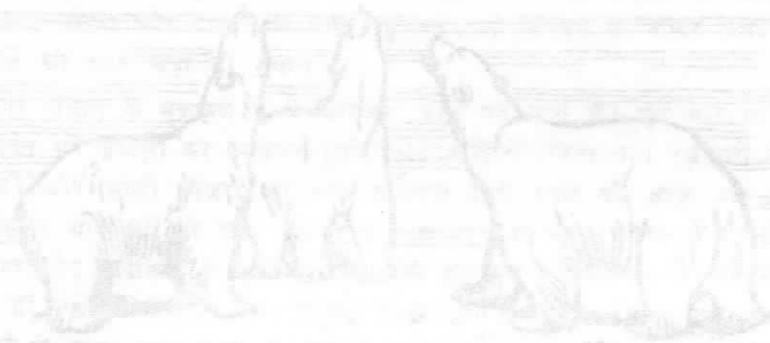
लंबी कूद का रेकार्ड

कुछ वर्ष की बात है, एक साइबेरियाई साकिन बकरी मास्को के चिड़ियाघर से तीन मीटर ऊंचे जंगले को फलांगकर भाग निकली और शहर की सड़कों पर दौड़ लगाने लगी। उसे देखकर छोकरे चिल्लाने और सीटियां बजाने लगे और वह मोटरकारों के बराबर से भागती निकलती गई और एक ट्राम के नीचे आने से बस बच ही गई। हमने उसका पीछा करना शुरू किया, मगर उसने हमें बहुत पीछे छोड़ दिया, क्योंकि जहां हम तो पैदल चलने की पटरियों पर भाग रहे थे, वहां वह बीच में पड़नेवाली सभी बाड़ों को फलांग जाती थी।

दो दिन हमें अपनी बकरी की कोई ख़बर नहीं मिली। तीसरे दिन एक मिलिशिया स्टेशन से हमें फ़ोन आया।

"हम मिलिशिया स्टेशन से बोल रहे हैं," उधर से किसी ने कहा। "बच्चों की एक भीड़ आपकी जंगली बकरी का गोर्की सड़क पर पीछा कर रही है। मेहरबानी करके उसे पकड़ने के लिए किसी को भेज दीजिये।"
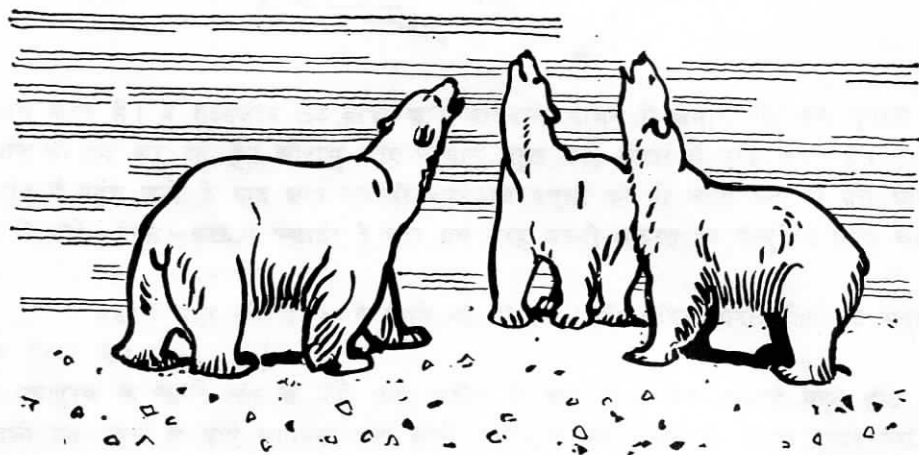
हमारे रखवाले फ़ौरन रवाना हो गये। गोर्की सड़क के सिरे पर उन्होंने बकरी को घेर लिया, मगर वह एक बड़े हेयर कटिंग सैलून के खुले दरवाज़े के भीतर जा घुसी। खुले दरवाज़े के ठीक सामने की दीवार पर एक बड़ा शीशा लगा हुआ था, जिसमें दरवाज़े का अक्स दिखाई देता था। बकरी उसी की तरफ़ झपटी और उसके सींगों ने कांच को चूर-चूर कर दिया।

"उफ़, शैतान ही आ गया!" उस शीशे के सामने बैठा ग्राहक डर के मारे चिल्ला उठा।

नाई ने फिर अपने ग्राहक की कुरसी की तरफ़ मुंह किया, तो वह ग़ायब – मानो हवा में विलीन हो गया हो! आख़िर जब बकरी को पकड़कर वहां से ले जाया गया और सब लोग शांत हो गये, तब कोने में तौलियों और कपड़ों के ढेर के नीचे से डर से कांपते ग्राहक का पता चला।

बकरी चिड़ियाघर से भाग कैसे गई?

बकरियों और बाहरी दुनिया के बीच का जंगला केवल इन जानवरों द्वारा अपनी क़ैद की ज़िंदगी में अर्जित प्रतिवर्त के कारण ही बाधा है – यह नैत्यिक पर्यावरण का सौपाधिक या अनुकूलित प्रतिवर्त है। बस यही उनका भागकर शहर में जाना रोकता है।

मिसाल के लिए, दाग़िस्तानी थेर अपने बाड़े के जंगले को आसानी से फलांग सकते हैं, जो साढ़े तीन मीटर ऊंचा होता है। वे इतने फुरतीले होते हैं कि अगर उन्हें पैर टिकाने को ज़रा भी जगह मिल जाये, तो वे मकानों की छतों पर भी चढ़ सकते हैं।

एक दिन हम एक नर थेर को बाड़े में हांकने की कोशिश कर रहे थे कि तभी उसने अचानक ऐसी ज़बरदस्त छलांग लगाई कि एक ही बार में एक बाड़ और पानी भरी खाई को पार कर गया और सीधा सफ़ेद भालुओं के बाड़े में जा पहुंचा। क्षण भर के असमंजस के बाद भालू उस पर टूट पड़े, मगर थेर – लगभग ज़रा भी भागे बिना – तोप के गोले की तरह ऊपर उछला और दीवार के ऊपर पहुंचकर, जो लगभग छः मीटर ऊंची थी, संगमर्मर की मूर्ति की तरह खड़ा हो गया।

मगर चीतल के मुक़ाबले में ये कारनामे फीके पड़ जाते हैं। एक बार यह हुआ कि हमें कोई दर्जन भर चीतलों को पकड़कर दूसरे चिड़ियाघरों में भेजना था। रखवालों ने घेरा बनाकर उन्हें धीरे-धीरे ख़ाली पिंजरों की तरफ़ जानेवाले पतले रास्ते की तरफ़ हटा दिया। अचानक झुंड मुड़कर आदमियों की तरफ़ मुंह करके खड़ा हो गया। एक चीतल ने अपनी पिछली टांगों को ताना और आदमियों के सिरों के ऊपर होते हुए हवा में उछलकर निकल गया। चौदह और चीतल भी उसके पीछे-पीछे छलांग मारकर निकल गये। यह एक अद्भुत दृश्य था! दो चीतल, जो बाड़े के अलग-अलग कोनों में खड़े थे, एक साथ उछले, हवा में एक-दूसरे के पास आये, अधर टकराये और दो गेंदों की तरह टकराकर अलग हो गये। अगले ही क्षण वे इसके बारे

में भूल चुके थे और जमीन पर खड़े थे और अपने आस-पास आदमियों के घेरे को चौकन्नी आंखों से देख रहे थे।

हमने मिट्टी पर उनके छोड़े निशानों को नापा और पाया कि उनकी लंबी कूद का रेकार्ड खड़े-खड़े छलांग मारने पर लगभग ग्यारह मीटर था।

यह किस्सा बकवास है कि बाघ भी चीतलों की तरह कूद सकते हैं। अगर बाघ पहाड़ी से नीचे कूद भी सकते हैं, तो भी वे ऐसी छलांग शायद ही कभी लगा सकते हैं। हमारे चिड़ियाघर में बाघों की सबसे लंबी छलांग छः मीटर ही थी।

फिर उस्सूरी बाघ चीतल को किस तरह पकड़ लेते हैं? पहले तो बाघ अपने शिकार के पास चुपके से आ पहुंचता है, इसके बाद वह छलांग लगाता है और उसी के साथ-साथ ऐसी गरजदार दहाड़ मारता है कि चीतल डर के मारे निश्चल हो जाता है। सुदूर पूर्वी ताइगा में शिकारियों ने अकसर ऐसे चीतलों को, जो छलांग लगाकर आसानी से बच निकल सकते थे, बाघ की दहाड़ के बाद उसी जगह जड़ हुए देखा है। द्रुतगामी चिकारों पर जब भेड़िये अचानक हमला करते हैं, तो वे भी इसी डर के मारे भाग जाने के बजाय अपने को पकड़ में आ जाने देते हैं।

मछलियों का पानी बिना परिवहन

एक दिन हमें डाक से एक संदूक मिला, जो नोवोसिबीर्स्क शहर से आया था। इसे वहां के चिड़ियाघर के बाल-जीवविज्ञानियों ने मास्को के चिड़ियाघर में अपने मित्रों को भेजा था।

बच्चों ने बड़े जोश के साथ संदूक को खोला। उन्होंने उसके ढक्कन को उखाड़ फेंका, तो उन्हें उसमें दो रूशियन मछलियां नज़र आईं। वे इस तरह निश्चल पड़ी हुई थीं, मानो मरी हुई हों।

संदूक की दीवारें दुहरी थीं। नोवोसिबीर्स्क से डाक द्वारा रवाना करने के पहले बच्चों ने दोनों दीवारों के बीच की ख़ाली जगह में बर्फ़ भर दी थी, मगर लंबी यात्रा के दौरान बर्फ़ पिघल गई थी और पानी दरारों में होकर निकल गया था।
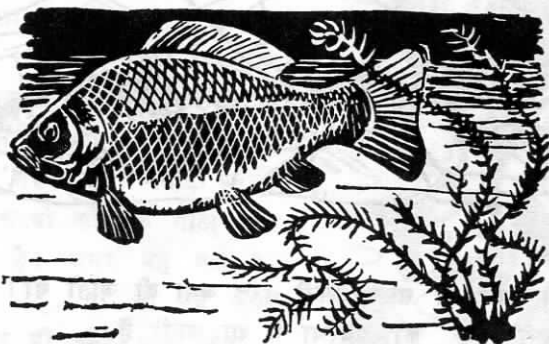
दोनों मछलियों को पानी की बाल्टी में डाल दिया गया। घंटे भर के बाद उनमें से एक अपने गलफड़े चलाने और सांस लेने लगी और थोड़ी ही देर में वह बाल्टी में तैरने लगी। मगर दूसरी मछली होश में नहीं आई।

दुर्भाग्यवश, जो मछली इतनी लंबी यात्रा के बाद भी ज़िंदा रही थी, वह संदूक की दीवारों से घायल हो गई थी, क्योंकि उसके लिए नरम अस्तर लगाने की बात बच्चों के दिमाग़ में नहीं आई थी।

अपने मास्कोवासी मित्रों को लिखे पत्र में नोवोसिबीर्स्क के बाल-जीवविज्ञानियों ने बताया कि वे प्रयोग करके यह देख रहे थे कि क्या मछलियां पानी के बिना रखी जा सकती हैं। "हम मछलियों को इस तरह से ग्यारह दिन रख सके हैं," उन्होंने अपने पत्र में गर्व के साथ बताया। "हम मछलियों को लगभग शून्य डिग्री सेंटीग्रेड के ताप कर रखते हैं। बारहवें दिन हम उन्हें पानी में फिर डाल देते हैं और वे ज़िंदा हो जाती हैं।"

मास्को चिड़ियाघर के बाल-जीवविज्ञानियों ने थोड़े ही दिन बाद कई सोना मछलियां नोवोसिबीर्स्क के चिड़ियाघर भेजीं। उन्हें इस लंबी यात्रा पर भेजने के पहले बच्चों ने यह प्रयोग किया था – उन्होंने उन्हें एक पेटी में रखकर तीन दिन और तीन रात बर्फ़ पर रखा था। बहत्तर घंटे बाद पानी में डालने पर मछलियां फिर होश में आ गईं।

ये प्रयोग बड़े व्यावहारिक महत्त्व के हैं। मछलियों को पानी में रखकर भेजना हमेशा मुश्किल और कभी-कभी तो असंभव होता है। अकसर इस तरह भेजने से मछलियों के पहलुओं पर बड़े-बड़े घाव हो जाते हैं। उन्हें सूखे पैकिंग में भेजना कहीं ज़्यादा सुगम है।

नोवोसिबीर्स्क और मास्को के बीच इस आदान-प्रदान के बाद हमें पता चला कि लेनिनग्राद के प्रशीतन संस्थान में भी यही शोध की जा रही है। वहां भी प्रयोग तभी सफल रहे
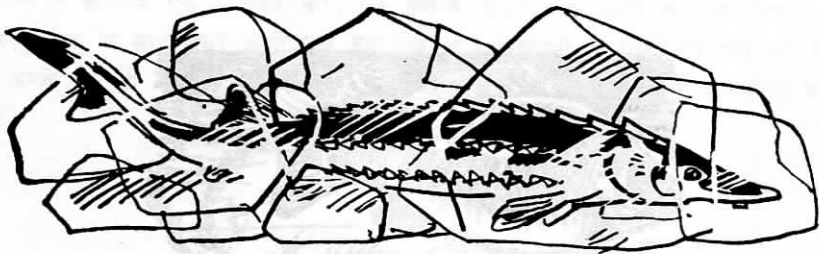
थे, जब मछलियों की खाल की सबसे ऊपरी परत जमा दी जाती थी। इससे मछलियां ऐनेबायोसिस या "आभासी मृत्यु" की अवस्था में आ जाती हैं।

लेनिनग्राद संस्थान में मछलियों को शून्य डिग्री सेंटीग्रेड तक ठंडा किया गया। पहले छोटी-छोटी मछलियों से शुरू करके वैज्ञानिकों ने बड़ी मछलियों पर प्रयोग करना शुरू किया। अस्तरख़ान के पास एक मत्स्य-फ़ार्म में पांच बड़ी स्टर्जियन मछलियां "ठंडी" की गईं। उन्हें १६.५° सें० ताप के पानी से भरे दो पीपों में रखा गया। पानी में धीरे-धीरे बर्फ़ मिलाकर उसके ताप को शून्य डिग्री सेंटीग्रेड तक गिराया गया। मछलियों ने हिलना-डुलना बंद कर दिया – वे ऐनेबायोसिस की अवस्था में आ गई थीं। दो घंटे बाद उन्हें पीपों से निकालकर विशेष हिम पेटियों में बंद कर दिया गया और इन पेटियों को एक रेफ़्रीजरेटर जहाज़ में रख दिया गया। अगले दिन जहाज़ अस्तरख़ान पहुंचा, जहां हिम पेटियां खोली गईं। मछलियां निश्चल पड़ी थीं और मरी हुई लगती थीं। लेकिन जैसे ही उन्हें १७° सेंटीग्रेड ताप के पानी में डाला गया, वे जी उठीं।

बेशक, ज़िंदा मछलियों का इस तरह परिवहन शुरू करने के पहले कई और प्रयोग करना ज़रूरी है, मगर तुम इस बात को समझ गये होंगे कि यह तरीक़ा बिलकुल व्यवहार्य है और बाल-जीवविज्ञानियों के प्रयोगों को बहुत शीघ्र ही उपयोग में लाया जायेगा।

तैरते हिमखंड पर

अधिकतर सीलें सुदूर उत्तर के बर्फ़ीले समुद्रों में रहती हैं। वे मछलियों, चिंगटों और मोलस्कों के शिकार में या तैरते हिमखंडों में विश्राम में दिन बिताती हैं। क्या तुमने कभी यह सोचा है कि जब हवा हिमखंडों को एक साथ ले आती है और खुले पानी के हिस्सों को ढंक देती है, तब सीलें पानी से कैसे निकलती या उसमें वापस जाती हैं?

कुछ लोगों का ख़याल है कि चूंकि सील का बदन गरम होता है, इसलिए अगर वह हिमखंड में एक ही ठौर पर काफ़ी देर रहे, तो वह बर्फ़ "पिघलाकर" समुद्र में वापस पहुंच सकती है। लेकिन बात यह नहीं है। सील की देह बहुत गरमी नहीं देती, क्योंकि वह खाल के नीचे चरबी की एक मोटी परत से पृथक्कित होती है। अगर वह बर्फ़ पर काफ़ी देर भी पड़ी रहे, तो भी वह उसमें एक उथला गढ़ा भर ही छोड़ पाती है।

चिड़ियाघर में हमने एक प्रयोग किया, जिसने इस प्रश्न पर रोशनी डाला। शरद के आगमन के साथ सात ग्रीनलैंडी सीलें एक बड़े तालाब में डाल दी गईं। सरदियों में तालाब खाना देने की जगह के पास एक छोटे से टुकड़े को छोड़कर बर्फ़ से ढंक गया। एक बार सीलें डर गईं और तालाब के भीतर जा घुसीं। ज़रा ही देर में पानी का बचा हुआ हिस्सा भी बर्फ़ से ढंक गया। कई घंटे गुज़र गये और कुछ नहीं हुआ। हमें परेशानी हुई– सीलें दम घुटने के कारण मर तो नहीं गईं?

सुबह मुझे तालाब में एक जगह से भाप

का एक लच्छा उठता दिखाई दिया। मैं बिना आवाज़ किये वहां चला गया और पारदर्शी हरी बर्फ़ के पीछे सातों सीलें नज़र आईं। उन सभी ने अपनी-अपनी नाकें बर्फ़ में एक पतली दरार से भिड़ा रखी थीं और उसी के ज़रिये वे सांस ले रही थीं। उनके सांस लेने के साथ-साथ बुदबुदाती हवा ने धीरे-धीरे नीचे की बर्फ़ को पिघला दिया। बर्फ़ पिघलाकर छेद करने में उन्हें कुछ घंटे लगे।

मुझे विश्वास हो गया कि उत्तर में उनके भाई-बंधु भी यही करते होंगे, क्योंकि ध्रुवीय समुद्रों में बर्फ़ आपस में टकराती हवाओं, ज्वारों और धाराओं के कारण सदा तड़कती रहती है। बाद में आर्कटिक खोजियों और अनुसंधानकर्मियों ने, जो उत्तरी आखेट क्षेत्रों का अध्ययन कर रहे थे, मेरे निष्कर्षों की पुष्टि की। जब शिकारियों को बर्फ़ के नीचे उससे अपनी नाकें सटाये सीलों का झुंड मिलता है, तो वे आम तौर पर यही कहते हैं, "ये फूंक मार-मारकर दरार बना रही हैं।"
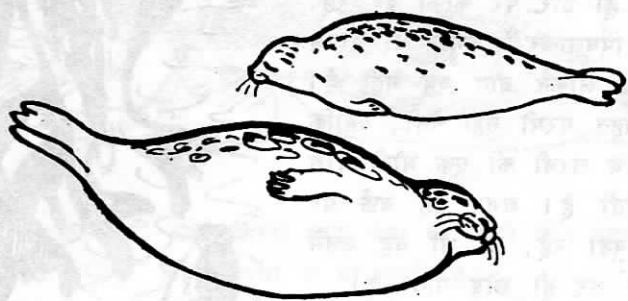
हमारे चिड़ियाघर में सरदियों में तालाबों पर बर्फ़ बहुत मोटी हो जाती है और इसलिए सीलें शायद ही कभी पानी के बाहर आती हैं, क्योंकि वह हवा की अपेक्षा गरम होता है। वसंत में वे धूप सेंकने और झपकी लेने के लिए बाहर निकलती हैं। जब बर्फ़ पूरी तरह से पिघल जाती है, तो वे घंटों इतनी तेज़ी के साथ तैरती हैं कि मोटर-बोटें भी पीछे छूट जाती हैं। वे कभी इधर, तो कभी उधर, कभी पानी के नीचे, तो कभी सतह पर, कभी पहलुओं पर, तो कभी पीठ के बल तैरती हैं। जब तालाब में छोटी-छोटी मछलियां डाली जाती हैं, तब सीलें इतनी फुरती के साथ उनका पीछा करती हैं कि इतने भारी और तट पर ऐसे मंथर जानवरों के लिए सचमुच आश्चर्यजनक है।

थक जाने पर सीलें अकसर तालाब के पेंदे पर सो जाती हैं। तीन-चार मिनट वे वहीं निश्चल पड़ी रहती हैं और फिर ऊंघती-ऊंघती ऊपर की तरफ़ आ जाती हैं। सतह पर आकर

वे अपने विशाल फेफड़ों में बड़ी मात्रा में हवा भर लेती हैं, सैकंड-दो-सैकंड के लिए अपनी आंखें खोलती हैं और फिर नीचे चली जाती हैं।

सीलों की नींद हलकी और सतर्कतापूर्ण होती है। अगर वे हिमखंड पर सोती होती हैं, तो वे हर चार-पांच मिनट में अपनी आंखें खोलती हैं, यह देखने के लिए चारों तरफ़ तेज़ी से एक निगाह डालती हैं कि कहीं कोई ख़तरा या आस-पास सफ़ेद भालू तो नहीं है और इसके बाद फिर सो जाती हैं। तुम शायद यह सोचो कि वे जान-बूझकर ऐसा करती हैं, मगर बात यह नहीं है। ऐसा वे केवल सहज बोध से, एक अंतर्जात (निरुपाधिक) प्रतिवर्त के कारण करती हैं, जो आर्कटिक में सीलों की कई पीढ़ियों के जीवन के दौरान विकसित हुआ है।

समुद्री शेर और कर्णाश्म

"इनको हुआ क्या है!" हमारे चिड़ियाघर के डाक्टर ने एक मृत समुद्री शेर की शव परीक्षा करते हुए अचरज से कहा। "इसकी आंतों और आमाशय में इतने फोड़े क्यों हैं? कहीं इनके खाने में तो कोई ख़राबी नहीं? मगर ग्रीन्लैंडी सीलें भी तो डोर्स मछली ही खाती हैं, लेकिन उन्हें ये फोड़े नहीं होते!"

कोई नहीं बता सका कि सभी समुद्री शेर या कानदार सील क्यों इस रोग के शिकार हो जाते हैं।

हमने मामले का अध्ययन किया और पहेली को जल्दी ही सुलझा लिया। समुद्री शेरों की आंतें डोर्स मछलियों की कर्णबालुका – उसके भीतरी कान की नन्ही-नन्ही हड्डियों, जिन्हें कर्णाश्म कहते हैं – से अटी पड़ी थीं। डोर्स ही हमारे समुद्री शेरों के आहार की मुख्य मद थी।

कर्णाश्म के किनारे दांतेदार होते हैं – वैसे ही, जैसे रेती के। समुद्री शेरों का आमाशय-रस इन को हज़्म नहीं कर पाता और वे उनके आमाशय और आंतों में इकट्ठा होते जाते थे और उनकी दीवारों को खुरचते रहते थे। इन

खरोंचों की जगह फोड़े हो जाते थे।

चिड़ियाघर में हर समुद्री शेर को १६ किलो डोर्स मछलियां रोज़ दी जाती थीं, जिससे हर दिन उनके पेटों में पहले से विद्यमान कर्णाश्मों में दो-तीन मुट्ठियों की और वृद्धि होती रहती थी। यह कल्पना करना आसान है कि इन सैकड़ों नन्हे-नन्हे आरों से इन जानवरों को कितने तकलीफ़देह घाव होते रहते होंगे!

लेकिन अगर बात यही थी, तो ग्रीनलैंडी सीलें क्यों हमेशा स्वस्थ और हृष्ट-पुष्ट बनी रहती थीं? ज़ाहिरा तौर पर इसीलिए कि ये सीलें उसी प्राकृतिक पर्यावरण में रहती हैं, जिसमें कि डोर्स। युगों-युगों से इन मछलियों को खाते-खाते सीलों ने उनके सिरों को काटकर बस उनके शरीरों को खाना और इस तरह कर्णाश्मों से बचना सीख लिया है।

इसके विपरीत हमारे समुद्री शेर दक्षिण अमरीका के तट से आये थे, जहां वे दूसरे आहार के आदी थे। जैसे ही समुद्री शेरों की मृत्यु के कारण का पता चला, हमने शेष समुद्री शेरों को सिरकटी डोर्स मछलियां खिलाना शुरू कर दिया।
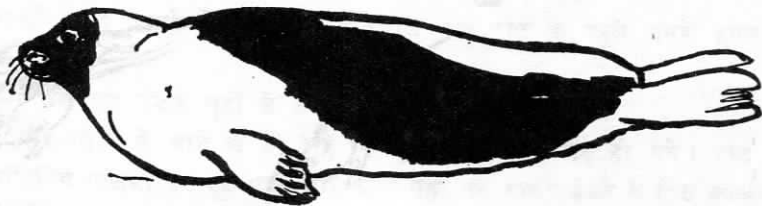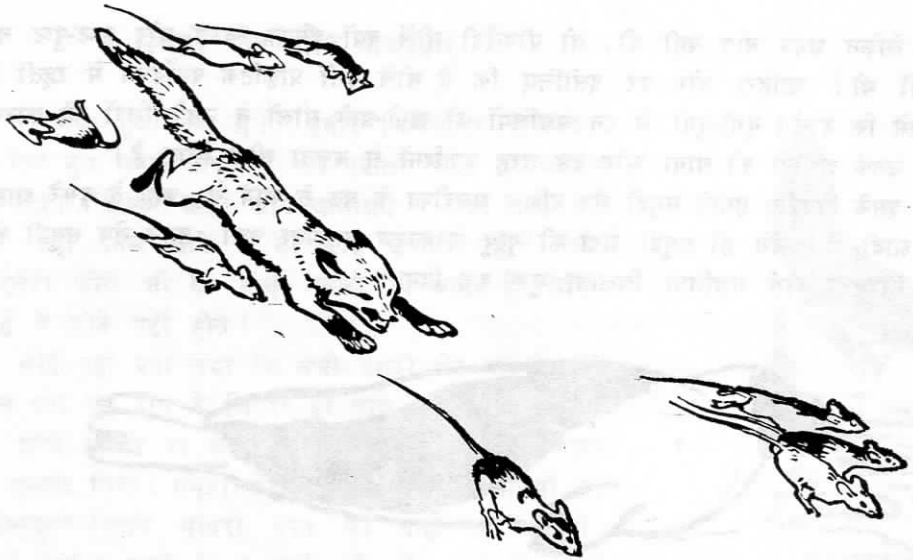
चूहा-विनाश अभियान

एक जमाना था कि जब मास्को में, उसके मकानों, गोदामों और दूकानों में चूहों की भरमार थी। उन्होंने हमारे चिड़ियाघर को भी अपना निवास बना लिया था। हर पिंजरे और बाड़े में चूहे, हर कमरे और कार्यालय में चूहे! वे जानवरों के खाने का सफ़ाया कर देते, इमारतों को नष्ट कर देते और चिड़ियाघर के निवासियों तक को चट कर जाते। मुर्ग़ाबियों की घात में वे तालाबों के किनारों पर छिपे पड़े रहते। तालाबों और जलजीवशालाओं में गोते मार-मारकर वे दर्जनों के हिसाब से मछलियों को मार देते। चूहों पर आमूल युद्ध की घोषणा करने के अलावा हमारे पास कोई चारा न था।

हमने युद्ध-परिषद में रणनीति निर्धारित करने के लिए अपने दिमाग़ लड़ाये। इस सुझाव को हमने वैसे ही रद्द कर दिया कि दुश्मन का ज़हर और टीकों के साथ मुक़ाबला किया जाये – हम चूहों के साथ-साथ अपने चिड़ियाघर के जानवरों को भी नहीं मारना चाहते थे। हमने इन बद-

माशों के पिंजरों में फंसाने और हवाई बंदूक़ों से मारने की कोशिश की, मगर शहर के आसपास के इलाक़ों से झुंड के झुंड चूहों ने आकर अपने रण में क्षत साथियों की जगह ले ली।

चूहों ने चिड़ियाघर के जीवन के प्रति अपने को बहुत ही अच्छी तरह अनुकूलित कर लिया था। उन्हें यह मालूम था कि मरे जानवर खानेवाले बड़े चमरगिद्धों के पिंजरों में उन्हें कोई ख़तरा नहीं है, मगर कोई बिरला और दु:साहसी चूहा ही ऐसा होगा, जो बाज़ के पिंजरे में अपनी शक्ल दिखायेगा, जिसके भोजन में वह एक प्रिय वस्तु है। चालाक चूहे उल्लुओं से दूर ही रहते थे, मगर दिन में वे अकसर उनके खाने का मज़ा उठाते थे, क्योंकि वे इस बात को अच्छी तरह जानते थे कि उनके पंखवाले शत्रु रात के पहले उनके हमलों में बाधा नहीं डालेंगे।

बिल्लियां तक इन उद्धत चूहों से डरती थीं।

फ़ेज़ेंटों और मोरों के बाड़े में तो चूहे बिलकुल क़ाबू के बाहर हो गये। रात के सन्नाटे में वे इन शांतिप्रिय पक्षियों पर टूट पड़ते और उन्हें पेड़ों पर जाकर बैठने के लिए मजबूर कर देते।

हम फ़ेज़ेंटों को दूसरी जगह ले गये और उनके बाड़े में एक-दो रातों के लिए घुग्घू उल्लुओं को रख दिया। सुबह के समय हमें क्षत-विक्षत, अधखाये चूहे अपने पंजों में लिये ऊंघते घुग्घू और इस बात के निशान देखने को मिलते कि बाड़े में रात भर घोर संग्राम चला था। रात की पाली के रखवाले इन लड़ाइयों के साक्षी थे। बार-बार ग़ुस्से में पागल चूहे घुग्घू पर हमला करते, जिसके पंजों में एक चिल्लाता हुआ शिकार दबा होता था। शक्तिशाली पक्षी उनका मुक़ाबला करता और अपने ज़ोरदार पंजों से अपने क्रोधोन्मत्त हमलावरों को कुचल और फाड़ देता। मगर लड़ाई में इतने सारे चूहे उतर पड़ते थे कि घुग्घू को अपने शिकार के साथ किसी पेड़ पर जाकर बैठना पड़ता था। कभी-कभी तो चूहे किसी भूरे उल्लू को, जो घुग्घू जैसा शक्तिशाली नहीं होता, हरा तक देते थे और उसके टुकड़े-टुकड़े कर देते थे।

मगर अपनी दु:साहसिकता के बावजूद चूहे लड़ाई के कई दिन बाद तक घुग्घुओं के पिंजरों से दूर ही रहते।

छोटी मगर फुरतीली स्तेपी लोमड़ी भी एक ऐसी दुश्मन थी, जिससे चूहे बचना ही पसंद करते थे। उसके "चार्ज" में जो बाड़ा होता था, वह सुबह मरे हुए चूहों से भरा मिलता था, लोमड़ी एक कोने में मुड़-तुड़कर रोयें की गेंद बनी आराम से सोई हुई होती थी, जबकि चारों तरफ़ फटे सिरोंवाले दर्जनों चूहे पड़े होते थे।

१९३५ के वसंत में लंदन के चिड़ियाघर के निदेशक डा० बीवर्स मास्को आये। वह हमसे भी मिले और उन्होंने हमें बताया कि उनके चिड़ियाघर ने समुद्री प्याज़ (Scilla maritima) के एक अर्क़ की सहायता से चूहों की समस्या को सफलतापूर्वक हल कर लिया है। प्राकृतिक अवस्था में यह पौधा भूमध्य सागर और एटलांटिक महासागर के तटों पर पाया जाता है। यह

बहुत कुछ हमारे हिमसुमन जैसा ही होता है और इससे संबद्ध एक प्रजाति सुख़ूमी के पास काले सागर के तटों पर भी पाई जाती है।

लंदन लौटने के बाद डा० बीवर्स ने इस अर्क़ की एक बोतल हमें भेजी। उसके लेबल पर लिखा था कि यह अर्क़ सिर्फ़ चूहों के लिए घातक है तथा अन्य सभी जानवरों के लिए एकदम हानिरहित है। तथापि, हमने कई प्रयोग करके इस दावे की सच्चाई को जांचने का निश्चय किया। हमने यह अर्क मिला खाना इसी प्रयोजन के लिए पकड़े कई चूहों, एक बिल्ली और दस गौरैयों को खिलाया। अगले दिन पाया गया कि चूहों के पिछले धड़ मारे गये थे, जबकि बिल्ली और गौरैयां मज़े में थीं।

दवा का दावा सच्चा साबित हो गया था। हमारा अगला क़दम था चूहों को नित्य एक ही समय पर दूध में भीगी रोटी खाने के लिए आने का आदी बनाना। इसके बाद दो किलो रोटी इस अर्क़ मिले दूध में मिलाकर रोज़ानावाली जगहों पर रख दी गई। अगले दिन चूहे कहीं भी नज़र नहीं आ रहे थे। बस, रास्तों में जहां-तहां एकाध चूहा मिल जाता था, जिसका पिछला धड़ मरा हुआ था।

मुर्ग़ाबियों की नांदों के पास, जहां भोजन के समय आम तौर पर सैकड़ों चूहे आया करते थे, सिर्फ़ चार शिशु चूहे ही आये।

हमारे चिड़ियाघर में कई बिल्लियां थीं। यद्यपि वे चूहों से लगभग आतंकित थीं, फिर भी वे चूहों की क़ीमत पर अपने को हट्टा-कट्टा रख लेती थीं। चूहों के मार दिये जाने के बाद बिल्लियों ने अपने को बड़ी तंगी की हालत में पाया। वे दुबली हो गईं और भूख ने उन्हें हमारी मुर्ग़ाबियों का शिकार करने के लिए मजबूर कर दिया। हमारे पास बिल्लियों को गोली से उड़ाने के अलावा और कोई चारा न रहा।

चूहों ने एक और तरीक़े से भी अपना बदला लिया। उनके बिलों से पिस्सुओं के झुंड के झुंड उमड़ पड़े और उन्होंने चिड़ियाघर देखने आनेवालों की मुसीबत कर दी – उन्हें मजबूरन सरे आम अपने को खुजाना पड़ता। चूहों के साथ लड़ाई का ख़ात्मा तभी हुआ, जब उसने सारे ही मास्को को अपने घेरे में ले लिया। चूहे और पिस्सू अब राजधानी से हमेशा-हमेशा के लिए ग़ायब हो गये हैं। और समुद्री प्याज़ अब हमारे देश के दक्षिणी भागों में उगाया जाता है, क्योंकि डाक्टरों ने पाया है कि यह एक मूल्यवान औषध भी है।

अंधी पाइक

मास्को के चिड़ियाघर की एक बड़ी और सुप्रकाशित जलजीवशाला में कुछ पाइक मछलियां रहती हैं। वे सभी हलके पीले रंग की हैं – सिवा एक के, जो गहरे काले रंग की है। जब वह मछलीमारों की निगाहों में आती है, तो वे अविश्वास के साथ इस काली पाइक की तरफ़ देखते हैं।

"प्रकृति का कैसा कौतुक है!" वे अकसर कहते हैं। "सचमुच की पाइक है – बस, रंग ही ग़लत है। क्या यह किसी अनजान नसल की है?"

नहीं, वह सामान्य पाइक ही है। रंग अलबत्ता दूसरा है, मगर यह इसलिए कि मछली का रंग प्रकाश पर निर्भर करता है – रोशनी जितनी तेज़ होगी, उसकी त्वचा उतने ही हलके रंग की होगी, क्योंकि तब त्वचा को रंग देनेवाले रंजक के दाने छोटी-छोटी पट्टियों में जमा होंगे। यही कारण है कि जो पाइकें ख़ूब रोशनीदार जलजीवशालाओं में रहती हैं, वे इतने हलके रंग की होती हैं।

तो उसी जलजीवशाला में तैरनेवाली काली पाइक के बारे में क्या कहा जाये? उसकी खाल का रंग क्यों जुदा है, यद्यपि वह उन्हीं परिस्थितियों में रहती है?

इस पाइक की तरफ़ ध्यान से देखने पर तुम्हें पता चलेगा कि उसकी दोनों आंखों पर मोतियाबिंद है – वह अंधी है। अनुसंधान से सिद्ध हुआ है कि रंजक के दानों पर प्रकाश त्वचा के ज़रिये नहीं, बल्कि आंखों के ज़रिये मस्तिष्क द्वारा क्रिया करता है। नेत्र की पुतली पर पड़नेवाला तीव्र प्रकाश तंत्रिकाओं को उद्दीपित कर देता है, जो स्पंदों को, मस्तिष्क को, और वहां से त्वचा को प्रेषित कर देती हैं, जिसके फलस्वरूप रंग बदल जाता है। अगर

तुम मछली की आंखें बांध दो, तो प्रकाश चाहे कितना ही तेज़ क्यों न हो, उसका रंग कुछ ही सैकंड में गहरा हो जायेगा। पाइक की आंखों पर अगर तुम लाल चश्मा चढ़ा दो, तो उसके साथ भी यही होगा।

काली पाइक यद्यपि अंधी है, मगर फिर भी भली चंगी नज़र आती है। वह अपने पास से गुज़रकर जाती मछलियों को अपनी बहनों की तरह ही पकड़ लेती है। शायद वह अपने आसपास के पानी की तरंगों और कंपनों को, या शायद उन ध्वनियों को अनुभव कर लेती है, जो विश्वास किया जाता है कि मछलियां पैदा करती हैं।

सभी मछलीमारों का ध्यान इस बात की तरफ़ ज़रूर गया होगा कि जो मछलियां काफ़ी गहराई पर, जहां रोशनी बहुत कम होती है, पकड़ी जाती हैं, वे खुली हवा में जल्दी ही हलके रंग की हो जाती हैं। जिन जगहों पर पानी उथला और धूपवाला होता है, वहां उन्हीं मछलियों का रंग हलके रंग की रेत और कंकड़ों के रंग के साथ लगभग बिलकुल मेल खा जाता है।

इसी चीज़ को हम संरक्षणात्मक रंग कहते हैं। यह कई मछलियों को अपने दुश्मनों से बचाता है और, दूसरी ओर, हमला करनेवाली मछलियों को उथले पानी में अपने शिकार पर टूटने में मदद करता है। मेरी बताई यह मिसाल प्राणियों को उनके पर्यावरण के अनुकूल बनाने में तंत्रिका-तंत्र की भूमिका को दर्शाती है।
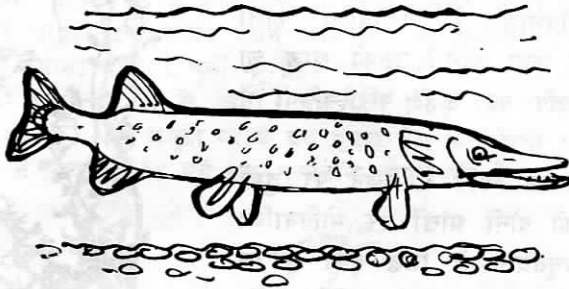
सफ़ेद ख़रगोश

वसंतकाल में ख़रगोश अपने शीतकालीन आवरण को उतार फेंकते हैं। वे अपने शीतकालीन रोम को बड़े-बड़े गुच्छों में तजते हैं और जल्दी ही अपने पतले और छोटे रोयेंवाले ग्रीष्मावरण में घूमने-फिरने लगते हैं। ख़रगोश अपने निवास की जलवायु के अनुसार मार्च, अप्रैल या मई तक में रोम-निर्मोचन करते हैं।

गरमियों भर सफ़ेद ख़रगोश पर खासे हलके, लाल-कत्थई रोयें रहते हैं। शरद में वह प्रकटत: ज़रा भी रोम-निर्मोचन किये बिना ही फिर सफ़ेद और रोयेंदार हो जाता है।

ख़रगोश दो-तीन सप्ताह के भीतर अपने शीतकालीन आवरण में आ जाता है। कभी-कभी वह शीतकालीन टोपी के बिना अपनी अबलक ग्रीष्मकालीन टोपी को धारण किये-किये ही घूमता रहता है। अकसर उसके लंबे कानों, नाक, गालों और माथे पर भूरे-कत्थई धब्बे रहते हैं। जिन ख़रगोशों पर इस तरह के धब्बे होते हैं, वे आम तौर पर ऐसे होते हैं, जिन्होंने अपना शीतकालीन आवरण ज़रा देर से – कड़े पाले के ठीक पहले धारण किया था, जब लम्बी रातें शुरू हुई थीं।

ऐसा लगता है कि शरद के छोटे होते दिन ही ख़रगोश को रोम-निर्मोचन और नया सफ़ेद रोयां धारण करने के लिए प्रेरित करते हैं।

हमने ख़रगोश को शरद में रंग बदलते देखा और इस बात की तरफ़ हमारा ध्यान गया

कि वे बहुत कम ही रोम-निर्मोचन करते हैं। इसलिए हमने सोचा कि उनके ग्रीष्मकालीन रोम का क्या होता है।

इस प्रयोग ने हमारे सवाल का जवाब दे दिया—जुलाई के ग्रंत में तीन सफ़ेद ख़रगोशों को हमने बास्मा, हाइड्रोजन पेरोक्साइड ग्रौर मेंहदी में रंग दिया।

तीनों चटक लाल रंग के हो गये ग्रौर शरद तक इसी रंग के रहे। नवंबर के मध्य तक वे ताज़ा बर्फ़ की तरह सफ़ेद हो गये—बस, उनके कानों के सिरे ही गहरे रंग के रहे। नया रोयां इतना लंबा हो गया था कि उसने गरमियों में रंगे रोयें को बिलकुल ढंक लिया।

हमने ग्रनुमान लगाया कि हर ग्रीष्मकालीन रोम के पीछे ग्राठ या दस शीतकालीन रोम उगे थे।

कुछ सफ़ेद बालों के सिरे भी लाल थे, जिससे यही साबित होता था कि शीतकालीन रोम जुलाई में ही उगना शुरू हो गया था, यद्यपि वह सबसे ज़्यादा शरद में ही बढ़ा।

सफ़ेद रोयां तेज़ी के साथ बढ़कर गहरे रंग के ग्रीष्मकालीन रोयें की जगह ले लेता है।

हमने एक ख़रगोश की पीठ से निकाली खाल की ऊपरी परत के एक छोटे से टुकड़े पर बालों की संख्या गिनी। इस ग्रापरेशन में यद्यपि ख़रगोश की "ज़िंदा खाल उतारी" जा रही थी, पर यह नहीं लगा कि वह ज़रा भी पीड़ा का ग्रनुभव कर रहा है। ग्राम तौर पर कहें, तो ख़रगोशों की यह विशेषता उल्लेखनीय है। ख़रगोशों की देहों से ऊपरी त्वचा (ग्रधिच्छद) का ख़ासा बड़ा टुकड़ा लगभग बिना ख़ून के निकले ही ग्रलग किया जा सकता है।

एक बार शिकार करते समय मैंने ज़मीन पर पड़े एक घायल ख़रगोश को हाथ में उठा लिया। मेरे हाथ में गुच्छेदार बालों से ढंकी त्वचा की एक पतली परत ही रह गई ग्रौर ख़रगोश ज़मीन पर गिर पड़ा। मुझे ख़रगोश की त्वचा पर ख़ून की एक बूंद भी नहीं दिखाई दी।

एक ग्रन्य ग्रवसर पर हमने बर्फ़ पर पैरों के निशान देखे, जो यह दिखाते थे कि एक लोमड़ी ने एक ख़रगोश का पीछा किया था।

लोमड़ी घुमावों पर तिरछी जाकर ख़रगोश के पास ग्राती जा रही थी। दो बार वह लगभग उसकी पीठ पर ही पहुंच गई थी। ख़रगोश पर झपट्टा मारकर लोमड़ी ने उसे मुंह में दबा लिया, मगर उसके दांतों में बस उसकी खाल का ज़रा-सा टुकड़ा ही रह पाया।

हर बार छूटकर ख़रगोश फिर तेज़ी के साथ ग्रागे भाग निकला।

लोमड़ी के पदचिन्हों के पास हमने रोयें से ढंकी खाल के टुकड़े देखे, जो उसने थूके थे, मगर ख़ून हमें कहीं भी देखने को नहीं मिला।

ख़रगोश की ज़िंदगी ग्रकसर उसके चमड़े की इस ढीली ऊपरी परत के कारण बच जाती है—ठीक वैसे ही, जैसे छिपकलियों की जान ग्रकसर उनकी ग्रासानी से टूटनेवाली दुम की बदौलत बच जाती है।

यह विशेषता भट तीतर में भी है। जब भी वह उत्तेजित होता है, उसके पंख ग्रासानी

से झड़ जाते हैं, यद्यपि वैसे घने जंगल में तीव्रतम गति से उड़ते समय उसका एक भी पंख नहीं झड़ता ।

जब शिकारी किसी भट तीतर को गोली मारता है, तो अपनी आख़िरी ऐंठनों में वह अपने चारों तरफ़ पंख झाड़ देता है। जिस आसानी के साथ उसके पंख निकल आते हैं, उसके कारण वह कभी-कभी बाज़ तथा अन्य शिकारी पक्षियों के पंजों से बच जाता है, जिन्हें अपने शिकार की जगह पंखों का एक गुच्छा ही मिल पाता है।

सधाये हुए गरुड़

असीम स्तेपी में एक हफ़्ता काम करने के बाद मैं अकेला सेमीपालातीन्स्क शहर की तरफ़ जा रहा था। दिन ढलने लगा था और मुझे अभी भी काफ़ी दूर जाना था। इसलिए एक टीले के उस पार अचानक एक कज़ाख़ यूर्ता (ख़ेमे) को देखकर मुझे बहुत ख़ुशी हुई। यूर्ता का स्वामी दरवाज़े पर ही खड़ा था और उसके चेहरे पर आतिथ्यपूर्ण मुसकराहट थी।

यूर्ता के कोने में मैंने एक बड़ा गरुड़ देखा, जो अपने चक्कस पर इस तरह निश्चल बैठा था कि एक बार तो मुझे यही लगा कि वह भुसभरा है।

"आप इसे अंधेरे में क्यों रखते हैं?" मैंने उस कज़ाख़ से पूछा। "वह उड़ना ही भूल जायेगा।"

कज़ाख़ भद्रतापूर्वक मुसकराया। उसने गरुड़ को उठाया और उसे बाहर खुले में ले गया। उसने उसके सिर पर पड़े नक़ाब को उतार दिया। गरुड़ पंख फड़फड़ाकर उड़ा और यूर्ता के ऊपर चक्कर काटने लगा। शक्तिशाली पक्षी धीरे-धीरे ऊपर ही उठता चला गया और मुझे यह शक होने लगा कि वह लौटकर आयेगा भी या नहीं। अचानक उसके मालिक ने एक तेज़ आवाज़ की और गरुड़ ने अपने पंख समेट लिये और पत्थर की तरह ज़मीन की तरफ़ गिरने

लगा। मैं अपने आपको एक दिल दहलानेवाली धड़ाक सुनने के लिए तैयार कर रहा था कि तभी उसके पंख फिर से फैल गये और वह धीरे से ज़मीन पर आ उतरा। कज़ाख़ ने उसे कच्चे गोश्त की एक बड़ी-सी बोटी दी और उसे यूर्ता में ले जाकर बैठा दिया।

"यह बहुत बढ़िया शिकारी है," कज़ाख़ ने कहा। "अब बर्फ़ गिर रही है। अगर आप कल मेरे साथ चलें, तो आप ताज़ा बर्फ़ पर शिकार देख सकते हैं।" मैं राज़ी हो गया और अगले दिन हम साथ-साथ चल दिये।

चमड़े के दस्ताने से सुरक्षित कज़ाख़ का एक हाथ विशेष सहारे पर टिका हुआ था, जिसका दूसरा सिरा घोड़े की काठी पर था। गरुड़ दस्तानेवाले हाथ पर निश्चल बैठा था। उसका सिर नक़ाब से ढंका हुआ था।

थोड़ी ही देर में कज़ाख़ को एक भेड़िये के पैरों के निशान नज़र आये और हम कोई आठ किलोमीटर उन्हीं पर चलते चले गये कि आख़िर वह हमें नज़र आ ही गया। कज़ाख़ ने गरुड़ के सिर पर से नक़ाब उतार लिया और पक्षी हवा में ऊंचे जा चढ़ा।

उसने एक चक्कर लगाया और फिर भाले जैसी अपनी आंखों को भेड़िये पर टिकाये-टिकाये बिजली की तरह उस पर टूट पड़ा। भेड़िया बहुत तेज़ भाग रहा था, मगर उन दोनों के बीच फ़ासला कम होता जा रहा था। हमने अपने घोड़े भेड़िये के पीछे लगा दिये, मगर कुछ ही मिनट के भीतर भेड़िया और गरुड़ दोनों एक टीले के पीछे ग़ायब हो गये।

जब हम युद्धस्थल पर पहुंचे, तो हमने देखा कि हम गरुड़ को ज़्यादा मदद नहीं दे सकते थे। उसने अपने एक पैर के पंजे भेड़िये की जांघ में गाड़ दिये थे और दूसरे पैर के पंजों ने भेड़िये के थूथने को फ़ौलादी जकड़ में ले लिया था। भेड़िया, जिसकी शक्ति निःशेष हो चुकी थी, इस शिकंजे जैसी जकड़े से हिल भी नहीं सकता था। मैंने देखा कि गरुड़ के पैर कच्चे चमड़े की एक पट्टी से एक साथ बंधे हुए हैं, अन्यथा भेड़िया उसे धकेलने की अपनी ज़ोरदार कोशिश में उसके पैर को उखाड़ सकता था।

लड़ाई अपने चरम पर पहुंच चुकी थी। भेड़िये की आंखें निकाल ली गई थीं, उसके थूथने से उखड़ी खाल की धज्जियां उसकी उघड़ी हुई दाढ़ों पर लटक रही थीं। कज़ाख़ अपना घोड़ा भेड़िये के पास ले गया और अपने चाबुक के दस्ते से उसने उसकी वेदना का अंत कर दिया। अपने विजित माल से अलग होने को अनिच्छुक गरुड़ ने अपने पंख भेड़िये पर फैला दिये। मैं सांस थामे देख रहा था कि कज़ाख़ ने तेज़ी से गरुड़ के पास जाकर अपना लबादा उसके ऊपर डाल दिया और उसके नीचे बड़ी फुरती के साथ उसे अंधा करने के लिए उसके सिर पर नक़ाब चढ़ा दिया। पक्षी तुरंत शांत हो गया।

कहना अनावश्यक है कि गरुड़ की जीत कोई आसान नहीं थी। इसीलिए शिकारी उसकी और भी ज़्यादा क़द्र करता है। यह निडर पक्षी उसे हर शरद में कई ख़रगोश, लोमड़ियां तथा अन्य बालदार जानवर देता है।

"आपने गरुड़ को भेड़िये की आंखें निकालना कैसे सिखाया?" मैंने जिज्ञासापूर्वक पूछा।

"मैं उसे भेड़िये की खोपड़ी में आंख के सूराख़ों में खाना दिया करता था," कज़ाख़ ने जवाब दिया।
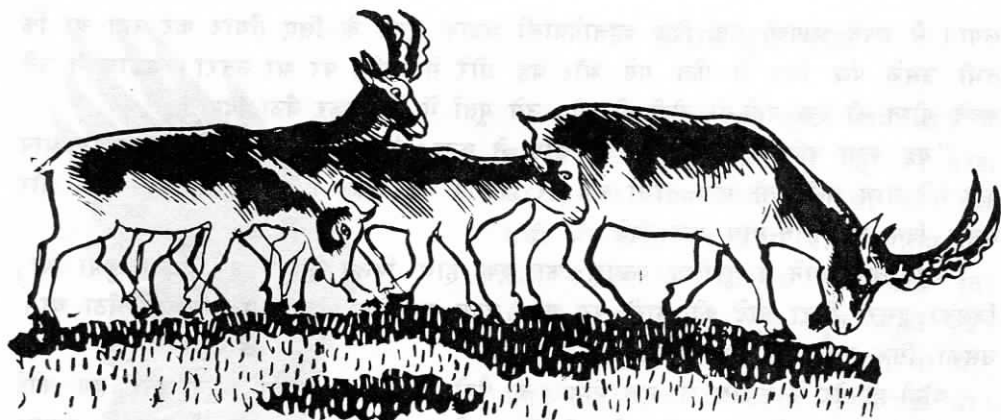
शिकार के तरीक़े

लोमड़ी सौ-सवा सौ मीटर तक भीत ख़रगोश का पीछा करेगी और अगर उसे कामयाबी मिलती नहीं लगेगी, तो वह पीछा करना छोड़ देगी और फिर चूहों के शिकार में लग जायेगी। शिकारी जानवर निरपवाद रूप से द्रुतगामी जानवरों का पीछा करके अपने को थकाते नहीं। बनबिलाव से ख़रगोश अगर बच कर निकल गया, तो वह शायद ही उसका और पीछा करेगा।

कई लोगों का ख़याल है कि सिर्फ़ रफ़्तार ही जंगल के निवासियों की परभक्षी जानवरों से बचने में मदद करती है। यद्यपि रफ़्तार बहुत माने रखती है, मगर रफ़्तार ही सब कुछ नहीं है।

उक्रइनी स्तेपियों में मैंने एक लोमड़ी को घास कुतरते ख़रगोशों के चारों ओर चक्कर काट-काटकर धीरे-धीरे उनके पास जाते देखा है। ख़रगोश उसे देखने के आदी हो गये थे और उन्होंने उसकी तरफ़ ध्यान देना बंद कर दिया था।

मास्को खाल तथा समूर संस्थान के स्नातकोत्तर छात्र म० प० पाव्लोव ने, जो क्रीमियाई जीव-जंतुओं पर अनुसंधान-कार्य कर रहे थे, एक बार पहाड़ी ढलान से धीरे-धीरे नीचे उतरते समय एक लोमड़ी को इसी तरकीब का उपयोग करते देखा था। लोमड़ी पास ही मैदान में घास खाते ख़रगोश की तरफ़ ज़रा भी ध्यान न देने का अभिनय कर रही थी। पाव्लोव एक पेड़ के पीछे छिप गये और चालाक लोमड़ी का धीरे-धीरे ख़रगोश के पास जाना देखने लगे। लोमड़ी जब ज़्यादा पास आ जाती, तो ख़रगोश उछलकर दूर चला जाता और घास कुतरने में लगा रहता।

काफ़ी देर तक यही होता रहा, मगर तभी हवा ने पाव्लोव के कोट को फड़फड़ा दिया।

ख़रगोश ने इस हरकत को देखा और उछलकर ग़ायब हो गया। लोमड़ी ने यह कुछ नहीं देखा था। जब उसने अपना सिर घुमाया और पाया कि ख़रगोश कहीं नज़र नहीं आ रहा है, तो वह उत्तेजित हो गई, उसने ज़मीन को सूंघा और भगोड़े के पीछे लपक चली।

लोमड़ी को ख़रगोश के इतने पास पहुंचने में ५–१० मिनट और लगते कि वह उस पर झपट पड़े। मगर पाव्लोव और हवा ने उसकी जान बचा दी।

एक बार की बात है कि मैं कालीनिन प्रदेश में एक काले तीतर को अपना प्रणय गीत गाते देख रहा था। तभी मेरा ध्यान इस बात की तरफ़ गया कि एक लोमड़ी हल रेखा में होकर चुपके से उसकी तरफ़ रेंग रही है। काले तीतर ने उसे देख लिया और अपना गीत रोके बिना वह वहां से भाग खड़ा हुआ। लोमड़ी खड़ी हो गई, कुछ मिनट पक्षी के सामने मटरगश्ती करती रही और फिर अपना सिर काले तीतर से दूसरी तरफ़ घुमाकर मैदान को पार करने लगी, मगर उसका हर क़दम उसे काले तीतर के निकट ही ला रहा था। काला तीतर पहले की ही तरह ऊंची आवाज़ में गाते-गाते पीछे की तरफ़ हटने लगा। वह सहज बोध से चालाक लोमड़ी से इतना फ़ासला रख रहा था कि ख़तरे से बाहर रहे।

जब लोमड़ी ने यह देखा कि उसकी चाल बेकार रही है, तो वह रुक गई। उसने गढ़े में से छप-छप करके कुछ पानी सुड़का और मैदान के दूसरे हिस्से की तरफ़ भाग गई, जहां से एक और काले तीतर के प्रणय गीत की आवाज़ आ रही थी।

अंद्रेई पोनोमार्योव नामक जीवविज्ञानी ने, जो गत महायुद्ध में मारे गये थे, मुझे नीचे लिखा क़िस्सा सुनाया था।

एक बार उन्हें भूतपूर्व लापलैंड पशु-संरक्षणालय में बर्फ़ जमी चूना नदी के एक बिन जमे हिस्से के पास एक लोमड़ी और एक वूल्वराइन के पैरों के निशान दिखाई दिये।

उनके निशानों को देखकर वह समझ गये कि दोनों जानवर बर्फ़ में पानी के इस छोटे से ताल के आसपास ही चक्कर काटते रहे थे। धीरे-धीरे उनका फ़ासला कम होता गया था और आख़िर वूल्वराइन ने लोमड़ी पर झपट्टा मारकर उसका काम तमाम कर दिया था। यह देखकर कि निशान ताज़े ही हैं, अंद्रेई पोनोमार्योव ने अपनी स्की पहनी और वूल्वराइन के पदचिन्हों और जिस लोमड़ी को वह घसीटकर ले जा रहा था, उसके घिसटने की लकीर का अनुसरण करना शुरू कर दिया। आख़िर उन्हें एक लाल धब्बा दिखाई दिया, जो पास जाने पर एक बड़ी नर लोमड़ी की लाश निकली, जिसका खोपड़ा कुचला हुआ था और गरदन चिरी हुई थी।

काकेशियाई पशु-संरक्षणालय में बार-बार देखा गया है कि भेड़िये पहाड़ी बकरों – थेरों – के झुंडों के साथ घूमते रहते हैं और उन्हें ही खाते हैं। बकरे अपने इन साथियों को देखने के आदी हो जाते हैं, जो सोते तक उनके बराबर ही हैं।

भेड़िये अपनी निगाह में पड़नेवाले पहले जानवर का ही पीछा नहीं करते, बल्कि वे उसकी

खड़ी चट्टानों पर उछलकर चढ़ जाने की क्षमता को जानते हैं और इसलिए वे ऐसे अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा करते हैं कि जब अपने शिकार को न्यूनतम शक्ति ख़र्च करके पकड़ सकें।

भेड़िये लगभग आधे मेमनों को खा जाते हैं।

बेशक, भेड़ियों का शिकार अगर तेज़ भागनेवाला न हो, या मुसीबत में फंसा हो, तो वे अवश्य उसका पीछा करते हैं। मिसाल के लिए, खुरदार जानवरों पर गहरी बर्फ़ में भेड़िये अकसर हमले करते हैं, जिसमें उनके लिए तेज़ भागना मुश्किल होता है और भेड़ियों के लिए उन्हें पकड़ना आसान रहता है।

स्तेपीवासिनी द्रुतगामिनी मादा हिरन के पास यदि छोटा बच्चा हो, तो शिकार पर निकला भेड़िया कभी उसे जल्दी में नहीं मारेगा। म० द० ज़्वेरेव नामक जीवविज्ञानी बताते हैं कि ऐसे मामलों में मादा भाग नहीं जाती, बल्कि अपनी संतान के पास ही रहती है, जो पास कहीं नागदौने की झाड़ी के नीचे पड़ी हो सकती है। भेड़िया मादा के पीछे ही धीरे-धीरे लंबे क़दमों से चलता रहा और बच्चे का पता लगाकर उसे मार डाला। ज़्वेरेव और उनके मित्र ने अपनी गाड़ी में हत्यारे का कोई १० किलोमीटर पीछा किया और क्योंकि उनके पास कारतूस नहीं थे, इसलिए उन्होंने उसे गाड़ी से कुचल दिया।

मैंने हवाई जहाज़ से खींचा एक बहुत ही दिलचस्प फ़ोटो देखा है, जिसमें सैगा मृगों का एक झुंड धीमी चाल से स्तेपी में भाग रहा था और उनके बीच में एक भेड़िया था।

न पक्षी ही अपने शिकार का ख़ात्मा करने में जल्दी करते हैं। मिसाल के लिए, अगर कौआ बतख़ के चूज़ों का शिकार कर रहा है, तो वह उन पर अचानक ही नहीं झपट पड़ता, बल्कि चूज़ों की क़तार का बड़ी शराफ़त के साथ अनुसरण करता है और जैसे ही वे उसकी तरफ़ ध्यान देना बंद कर देते हैं, वह चुपके से क़तार के आख़िरी चूज़े को उठा लेता है और उड़कर भाग जाता है।

मां के खुरों का ख़तरा

१९३४ के वसंत में एक अफ़्रीकी मादा मसेदार सूअर ने मास्को चिड़ियाघर में पहली बार बच्चे दिये। बच्चों की संख्या ७ थी।

यह बात अजीब लगती थी कि मां अपने बच्चों के लिए ज़रा भी मातृस्नेह नहीं प्रदर्शित करती थी। वह उन लोगों से तो डटकर उनकी रक्षा करती, जिनसे उसे यह लगता कि वे बच्चों को नुक़सान पहुंचाना चाहते हैं, मगर स्वयं वह अपने खुर इतनी लापरवाही से ज़मीन पर रखती थी कि लगता था कि उसके बच्चे किसी भी क्षण कुचलकर मर जायेंगे।

लेकिन बच्चे शुरू से ही अत्यंत फुरतीले, तेज़ और मज़बूत लगते थे। जैसे ही उनकी मां खड़ी होती, वे बिखर जाते। भूखे बच्चे स्तनपान करते समय भी लगातार चौकन्ने रहते थे और जैसे ही वह हिलती, वैसे ही वे मां की छाती के पास से उछलकर अलग जा खड़े हो जाते।

फिर भी दो बच्चे इन भयानक खुरों से कुचलकर मारे ही गये। ये दोनों सबसे कमज़ोर और सबसे कम फुरतीले बच्चे थे।

मादा मसेदार सूअर अपने बच्चों के प्रति ऐसा बेढंगा व्यवहार क्यों करती है? क्या उसमें उनके लिए ज़रा भी मातृस्नेह नहीं होता?

मातृस्नेह बेशक होता है। लेकिन उसका मातृस्नेह अजीब तरह का होता है। मसेदार सूअरों के मामले में प्राकृतिक वरण जन्म के क्षण से हावी हो जाता है।

मां के व्यवहार में नरमी के इस अभाव का मतलब
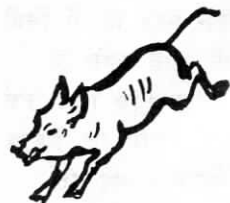
यही है कि केवल वही बच्चे जीवित बच पायेंगे, जो जीवन के लिए सबसे अधिक उपयुक्त हैं। बचनेवाले प्रजाति का तीव्रतम विकास सुनिश्चित करेंगे। मसेदार सूअर का, जो अफ़्रीकी जंगल के विकट जानवरों के बीच रहता है, मज़बूत होना आवश्यक है।

मसेदार सूअर के बच्चों के अगले पैरों पर जन्म से ही घट्ठे होते हैं। वयस्क मसेदार सूअरों के शरीर के कुछ भागों की खाल बहुत सख़्त और मोटी होती है। चरते समय मसेदार सूअर इन जोड़ों पर ही चलते हैं, जिन्हें कभी-कभी ग़लती से घुटने कहा जाता है।

नवजात मसेदार सूअर के ऊपरी होंठ में दो मुश्किल से ही नज़र आनेवाले अर्ध-चंद्राकार गढ़े से होते हैं, जो बाद में शक्तिशाली बाहरी दांतों के आधार बन जाते हैं। वयस्क मसेदार सूअर अपने "घुटनों" के बल इधर-उधर सरकता है और अपने बाहरी दांतों से मूलों को उखाड़ता है।
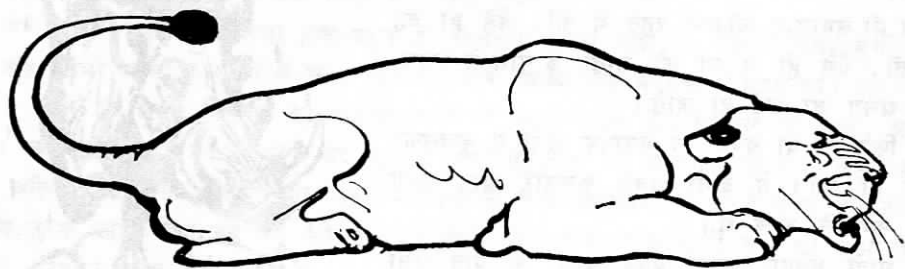
जंगली बतख़ों की ख़ुराक

भला जंगली बतख़ें क्या खाती हैं?

जंगली बतख़ को गोली से मार लीजिये, उसका पेट काटकर खोल लीजिये और ख़ुद देख लीजिये... कुछ लोग सोचते हैं कि यह बात इतनी आसान है।

बतख़ों के पेट में उन्हें कुछ मिला, तो बस जलकुंभी, सरकंडे, नरकुल तथा अन्य दलदली पौधों के बीज।

जंगली बतख़ों के लिए पर्याप्त खाना सुनिश्चित करने के लिए शिकारगाहों के कर्मचारी इस बात का ध्यान रखते कि दलदलों में इस तरह के पौधे बहुतायत से पैदा हों। ठीक है कि लोगों ने अकसर बतख़ों को मछली, मेंढक, कीड़े और क्रस्टेशिया (पर्पटीदार जलजीव) खाते देखा है, मगर इस ख़ुराक को संयोग की बात ही माना जाता था, क्योंकि चाहे कितनी ही जंगली बतख़ों के पेट चीरकर देखे गये, किसी को भी इन चीज़ों का कभी कोई निशान भी न मिला।
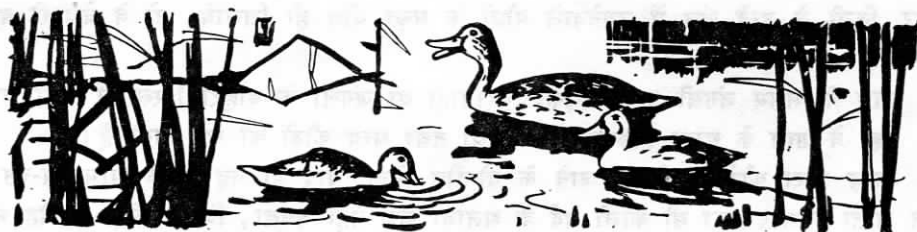
लेकिन जब हमारे चिड़ियाघर में साइबेरिया से लालसरों का एक झुंड आया, तो हमें अपने विचार बदलने पड़े। मास्को पहुंचने के पहले ये लगभग डेढ़ महीना रेलगाड़ी और स्टेशनों पर बिता चुकी थीं। रास्ते में इन्हें गेहूं और मछली के अलावा और कुछ खाने के लिए नहीं दिया जाता था, लेकिन जब हमने सफ़र के दौरान मर जानेवाली कुछ लालसरों की शव परीक्षा की, तो उनके पेटों में हमें जलकुंभी के बीजों के अलावा और कुछ न मिला।

क्या यह संभव हो सकता था कि ये लालसरें इन बीजों के अलावा, जिन्हें वे पैंतालीस दिनों में भी हज़्म नहीं कर पाई थीं, और कुछ नहीं खाती थीं!

ये सख़्त बीज उनके पेटों में ठीक इसी कारण बाक़ी बच रहे थे कि वे उन्हें हज़्म नहीं कर पाती थीं। छोटी बिल्लौरी गोलियों की तरह ये बीज भी पत्थरों का काम करते थे, जो भोजन को पीसने में सहायता देते हैं।

तो फिर, बतख़ें खाती क्या हैं?

चिड़ियाघर में हमने यह जानने का बीड़ा उठाया कि इसका क्या कारण है कि बतख़ों के पाचन-ग्रंगों में जांतव खाद्य का कोई भी निशान बाक़ी नहीं रहता।

हमने जंगली बतख़ों के एक दल को सावधानीपूर्वक चुने खाने पर रखा ग्रौर उनके ग्रामाशयों तथा ग्रांतों की ग्रंतर्वस्तुग्रों का ग्रध्ययन करने के लिए उन्हें एक-एक करके निश्चित ग्रवधियों के बाद चीरा।

भोजन के बीस मिनट बाद पहले पक्षी के ग्रामाशय में मछली, केंचुए या क्रस्टेशिया का कोई निशान भी बाक़ी न था। दूसरी बतख़ को खाने के चौथाई घंटे बाद ग्रौर तीसरी को दस मिनट बाद चीरा गया।

ग्राश्चर्य की बात, नतीजा बिलकुल वही था – पक्षियों द्वारा खाये भोजन का कोई ग्रवशेष उनके ग्रामाशयों में नहीं था। एक शल्क तक नहीं मिल पाया, यद्यपि ग्रन्य पशुग्रों को पाइक-पर्च मछलियों के शल्कों को पचाने में काफ़ी समय लगता है।

बतख़ें जिस ग्राश्चर्यजनक गति से ग्रपना भोजन पचाती हैं, उसी से उनकी ख़ुराक की प्रकृति के बारे में ग़लत विचार बन गया था।

निस्संदेह, कई पौधों की भी बतख़ों के भोजन में बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका होती है, मगर ग्रगर किसी ने उन्हें जंल में उगनेवाले पौधों के सख़्त बीज ही खिलाये, तो वे बेचारी बहुत जल्दी मर जायेंगी।

शाम के समय जंगली बतख़ें उड़कर चरागाहों या जंगलों के बाहरी हिस्सों में चली जाती हैं, जहां वे शाम के समय निकलनेवाले केंचुग्रों तथा ग्रन्य कीड़ों को खा जाती हैं।

बतख़ द्वारा कीड़े के निगले जाने के दो-तीन मिनट बाद ही वह उसके ग्रामाशय-रस में घुल जाता है ग्रौर ज़रा सी काली गर्द के ग्रलावा कुछ नहीं बचता, जिससे कीड़े की देह भरी होती है।

रेतीले किनारों के पास ग्राम तौर पर पाये जानेवाले नन्हे खंजनों के पेट भी ख़ाली ही मिलते हैं। पानी के सिरे के बिलकुल पास तक फुदकते जाकर ग्रौर फिर पंख फड़फड़ाकर वापस ग्राते ये पक्षी रेत पर नाचते हुए से लगते हैं। जैसे ही लहर वापस जाती है, वे गीले किनारे पर पानी के लौटकर ग्राने के पहले-पहले जल्दी-जल्दी में कुछ चुगते हैं।

हमने इन खंजनों में से कुछ को गोली से मारा ग्रौर फिर उन्हें चीरा। हमें उनके तटों में रेत के कणों के ग्रलावा कुछ भी न मिला।

हम यह न मान सके कि ये पक्षी रेत ही की तलाश कर रहे थे।

बाल-जीवविज्ञानियों ने किनारे के पास की गीली पट्टी से, जो पक्षियों को इतना ग्राकर्षित करती लगती थी, कुछ गाद को छानकर इस पहेली को हल कर दिया। छलनी में ग्रसंख्यों नन्हे ग्रल्परोमिण कृमि बचे रहे।

ग्रब हम जान गये कि खंजनों को ग्राकर्षित करनेवाली चीज़ क्या थी। जैसे ही लहर तट

से लौटकर जाती थी, कृमि गाद से कुलबुलाकर निकलने लगते थे। पक्षी लहर के लौटने के पहले ही उन्हें चुग लेते थे और उनका आमाशय-रस एक-दो मिनट में ही कृमियों को ख़त्म कर देता था।

पक्षियों की पाचन विशेषताओं का अध्ययन करते-करते हमने देखा कि अन्य पक्षी भी अपना भोजन उतनी ही जल्दी पचा लेते हैं, जैसे कि बतख़ें और खंजन।

गरमियों के उत्तरार्ध में बतख़ें उड़कर कुछ तालाबों को चली जाती हैं, जहां कारण्ड घास बहुतायत से उगती है। हमने एक बार अपने से पूछा कि उन्हें ये तालाब क्यों पसंद हैं? कारण्ड घास तो हर जगह उगती है। हमने पाया कि हमारी मारी बतख़ों की आंतें केवल कारण्ड घास ही नहीं, बल्कि तितलियों की इल्लियों से भी भरी हुई थीं। ये तितलियां तैरती कारण्ड घास पर अंडे देती हैं और उनसे जब इल्लियां निकलती हैं, तो वे उसके मुलायम पत्तों का सफ़ाया करना शुरू कर देती हैं। बतख़ें कारण्ड घास के साथ-साथ इन इल्लियों को भी खा जाती हैं। मगर ऐसी तितलियां सभी तालाबों में नहीं पाई जातीं।
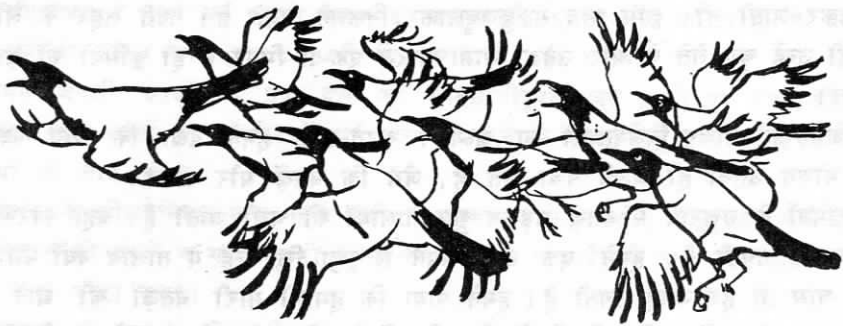
क्या कौए गिन सकते हैं ?

रेतीले तट पर एक कौआ उड़ रहा था। वह अपने पंख धीरे-धीरे, थके-थके चला रहा था। वह प्रकटतः बहुत भूखा था।

अचानक वह वहीं मंडराते हुए नीचे ज़मीन की तरफ़ गौर से देखने लगा। फिर उसने नीचे झपट्टा मारा, रेत पर उतर गया और फुदककर छिछले पानी में पड़ी एक सीपी के पास चला गया। उसने सीपी को चोंच में उठाया और वहां से उड़ चला।

जब वह ज़मीन से लगभग पंद्रह मीटर ऊपर उठ गया, तो उसने सीपी को गिरा दिया और उसके पीछे-पीछे नीचे उतर आया। सीपी रेत पर जाकर गिरी, मगर तड़की तक नहीं। तीन बार कौए ने इसी तरह उसे उठाया और नीचे गिराया।

क्षुधा पीड़ित कौए के लिए इतना प्रयास शायद बहुत भारी था। उसने किनारे पर कुछ देर विश्राम किया और फिर कई मीटर ऊपर उड़कर इधर-उधर देखा। उसने किनारे के पथरीले हिस्से पर एक-दो चक्कर लगाये और फिर सीपी के पास लौट आया।

चौथी बार उसने सीपी को पत्थरों पर गिराया। आख़िर वह टूट गई और कौआ अपने भोजन के लिए तेज़ी से उतर आया। अपने मज़बूत पंजों से दोनों हिस्सों को अलग करके वह पेटुओं की तरह मोलस्क के नरम शरीर को चोंच से निकाल-निकालकर खाने लगा।

यह कहानी मुझे एक पत्रकार ने सुनाई थी, जो कौए के अध्यवसाय को देखकर चकित हो गये थे। जीवन ने कई

पशुओं को ऐसी आदतें सिखा दी हैं, जो संकट की घड़ियों में उनके काम आती हैं।

चुपके का सीप को खोलने का तरीक़ा कौए से भिन्न है। वह सीप को कसकर अपनी चोंच में पकड़ लेता है और फिर पत्थर पर मार-मारकर उसे तोड़ देता है।

कौओं का मस्तिष्क अधिकांश पक्षियों से ज़्यादा विकसित है और इसलिए जो लोग उनकी तरफ़ ज़्यादा ध्यान से देखते हैं, उन्हें कभी-कभी अजीब बातें देखने को मिलती हैं।

उराल के एक शिकारी ने एक विचित्र घटना का वर्णन किया था।

उराल में अपना निशाना सुधारने के इच्छुक एक खनन इंजीनियर ने हर दिन कौओं पर गोली चलाना शुरू किया। उनकी पहली गोलियों के दो-तीन दिन बाद कौए उनके आगमन के साथ उड़कर भाग जाने लगे। वे उड़कर बस उनकी रायफ़ल की पहुंच के बाहर चले जाते।

इंजीनियर ने कौओं के आखेट-स्थल – कूड़े के ढेर के पास एक भुसौरे में जा छिपने की सोची।

लेकिन कौओं ने उन्हें चुपके से भुसौरे में घुसते देख लिया था और तुरंत उड़कर पेड़ों की फुनगियों पर जा बैठे। कूड़े के ढेर पर वे तभी लौटकर आये, जब इंजीनियर साहब भुसौरे से निकलकर चले गये।

अगले दिन इंजीनियर एक मित्र के साथ भुसौरे में गये, जो वहां ज़रा ही देर ठहरा। इंजीनियर साहब को यक़ीन था कि जब कौए एक आदमी को भुसौरे से जाते देखेंगे, तो वे कूड़े के ढेर पर आ जायेंगे।

मगर कौए ऐसी मामूली चाल से धोखा खानेवाले नहीं थे। जब तक इंजीनियर साहब हार मानकर नाश्ता करने के लिए अपने घर नहीं चले गये, तब तक एक भी कौए ने पेड़ों की फुनगियों की निरापद जगह को नहीं छोड़ा।

अभागे शिकारी को इस बात पर सख़्त गुस्सा आया कि वह – एक आदमी – बेवकूफ़ कौओं के एक झुंड को नहीं बहका सका।

अगले दिन वह दो दोस्तों के साथ भुसौरे में गये और उन्होंने उन्हें तुरंत वापस भेज दिया।

जब दोनों आंखों से ओझल हो गये, तो इंजीनियर दीवार की एक दरार में से बड़ी आशा के साथ देखने लगा। कौए सब्र के साथ फुनगियों पर बैठे थे।

"मैं भी हार नहीं मानूंगा!" इंजीनियर ने क़सम खाई और अगले दिन तीन मित्रों के साथ भुसौरे में पहुंचे।

इस बार वह जीत गये। जब तीनों आदमी भुसौरे से निकल आये और उन्होंने अहाते को पार कर लिया, तो कौए तेज़ी के साथ कूड़े के ढेर पर उतर आये।

मेरे शिकारी मित्र ने कहा, "इस सांयोगिक प्रयोग से यह निष्कर्ष निकलता है कि कौए तीन तक गिन सकते हैं।"

क्या यह बात सही है? ज़्यादा संभव यही है कि कौग्रों ने बस ग्रपने दुश्मन की सूरत-शक्ल को याद कर लिया था ग्रौर वे उनके ग्रौर लोगों के साथ भुसौरे से जाने का इंतज़ार करते थे।

जब तीन ग्रादमी एक साथ भुसौरे से निकले ग्रौर चले गये, तो बहुत करके कौग्रों ने उनमें से किसी एक को ग्रपना दुश्मन समझ लिया।

ग्राम तौर पर ग्रादमियों के चेहरों ग्रौर ग्राकृतियों के बारे में कौग्रों की याददाश्त बहुत ग्रच्छी होती है ग्रौर उन लोगों को वे ख़ासकर याद रखते हैं, जो उनको नुक़सान पहुंचाते हैं।
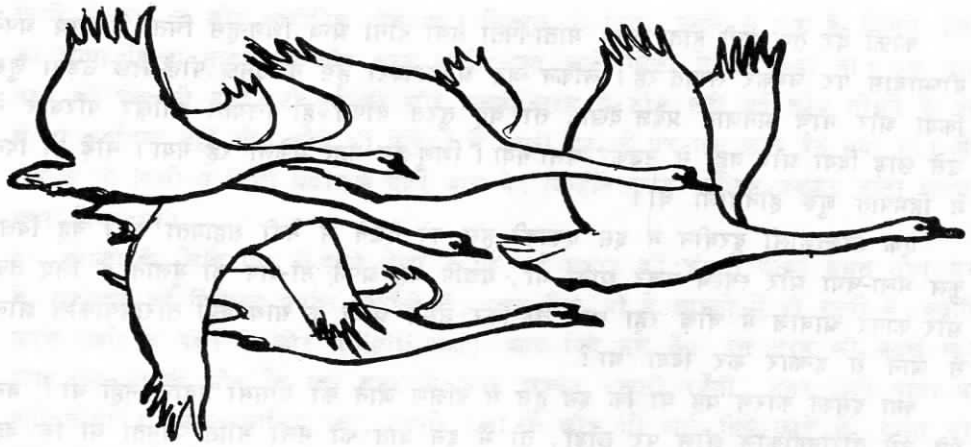
तोरानगीकोल झील

इर्तीश नदी के ऊपरी प्रदेश का अनुसंधान करते हुए मैंने तोरानगीकोल झील के तट पर उगे घने नरकुलों में हंसों के एक परिवार को देखा।

परिवार में माता-पिता और तीन भूरे शिशु-हंस थे। पतझड़ का मौसम था और ये सुंदर पक्षी अपनी दक्षिण की उड़ान के लिए तैयार हो रहे थे। वे झील छोड़ भी चुके थे और अपने घर से कोई पांच किलोमीटर दक्षिण पहुंच चुके थे।

अचानक एक शिशु-हंस अन्यों से अलग हो गया और वापस झील की तरफ़ उड़ गया। परिवार उसके पीछे हो लिया और माता-पिता भगोड़े के ऊपर चक्कर काटते हुए हर तरह से उससे परिवार के साथ दक्षिण चलने के लिए आग्रह करने लगे। पहले वह एक बार फिर उनके साथ चल दिया, मगर शीघ्र ही फिर झील की तरफ़ लौट आया।

काफ़ी देर तक यही होता रहा। माता-पिता तथा दोनों अन्य शिशु-हंस चिंता के साथ अपने ग्रीष्मावास पर चक्कर लगाते रहे। लेकिन जब अवज्ञाकारी हंस ने उनके पीछे-पीछे उड़ना शुरू किया और नीचे अनजान प्रदेश देखा, तो वह तुरंत वापस हो लिया। आख़िर परिवार ने उसे छोड़ दिया और वहां से उड़कर चला गया। शिशु-हंस वहां अकेला रह गया। थोड़े ही दिन में हिमपात शुरू होनेवाला था।

एक शक्तिशाली दूरबीन ने इस एकाकी हंस को देखने में मेरी सहायता की। वह बिलकुल भला-चंगा और स्वस्थ नज़र आता था, यद्यपि वह अपने मां-बाप को बुलाने के लिए तेज़ और कातर आवाज़ में चीख़ रहा था। तो फिर उसने औरों के साथ क्यों तोरानगीकोल झील से जाने से इन्कार कर दिया था?

क्या इसका कारण यह था कि इस हंस में दक्षिण जाने की मौसमी प्रवृत्ति नहीं थी? जब मैंने उसे तोरानगीकोल झील पर छोड़ा, तो मैं इस बात को भली भांति जानता था कि वह अपने परिवार को अब फिर कभी नहीं देखेगा। अगर वह और उत्तर से अपने घर के ऊपर होकर दक्षिण जानेवाले अन्य हंसों के साथ उड़कर नहीं गया, तो उसका सरदियों में मर जाना निश्चित था।
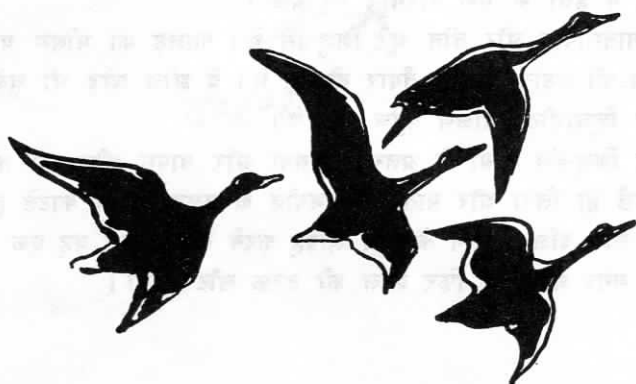
मौसमी पक्षियों में उड़कर दक्षिण जाने की अनिच्छा बिरले ही देखने को मिलती है, इसलिए हमारी यह जानने में बहुत दिलचस्पी थी कि व्याज़्मा नगर के आसपास जो कई रुक (कौओं की एक जाति) वहीं रह गये थे, वे दक्षिण क्यों नहीं गये।

इस दृष्टि से हमने इनमें से पंद्रह पक्षियों को गोली से मारा और पाया कि उनमें से हर

किसी में कोई न कोई शारीरिक दोष था। मिसाल के लिए, उनमें से एक के निचले जबड़े का आधा हिस्सा गायब था और बहुत करके बहुत पहले गोली से उड़ गया था। एक दूसरे पक्षी की पंख की हड्डी टूटी हुई थी और अच्छी तरह से ठीक नहीं हुई थी। तीसरे के पंजे में दो उंगलियां नहीं थीं। चौथे की पेशियों में काफ़ी गहराई पर एक छर्रा बैठ गया था। शेष सब के भी किसी न किसी प्रकार के गहरे घाव थे, जिन्होंने उनका दक्षिण उड़कर जाना असंभव बना दिया था।

मास्को के चिड़ियाघर में हमने देखा है कि कई प्रकार की जंगली बतखें वसंत तथा शरद में उड़ जाने की निश्चित प्रवृत्ति दर्शाती हैं, मगर फिर भी वे मास्को में ही रहती हैं, क्योंकि उनके उड़ने के पंखों के छोर (digiti alac) काट दिये गये हैं। इस तरह की बतखें ख़ूब ऊपर उड़ जायेंगी और देर तक शहर के ऊपर चक्कर काटती रहेंगी, मगर लंबी यात्रा पर नहीं जायेंगी। हमारे जलसिंह तक, जिनके पंखों के छोर भी काट दिये जाते हैं, वसंत और शरद में मास्को की सड़कों के ऊपर उड़ते रहते हैं, मगर सरदियां राजधानी में ही बिताने के लिए हमेशा चिड़ियाघर में लौट आते हैं।

हो सकता है कि जो शिशु-हंस तोरानगीकोल झील पर ही रह गया था, उसे भी कोई पुराना घाव था।
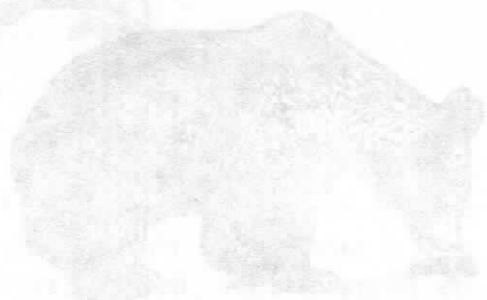
गणित के आश्चर्य

दर्शकों का एक दल एक बाड़े के पास खड़ा हो गया, जिसमें भालुओं के कई बच्चे मजे में हाथापाई कर रहे थे।

उनके पथप्रदर्शक ने उन्हें भालू परिवार की कहानी सुनाई और फिर वह एक अप्रत्याशित प्रश्न कर बैठा।

"मेरे ख़याल से गणित तो आप सभी को आता है, इसलिए ज़रा इस सवाल को हल करने की कोशिश कीजिये। नवजात मानव शिशु का वज़न २.५ से ४ किलोग्राम तक होता है, इसलिए बताइये कि अगर मादा भालू का वज़न लगभग २२० किलोग्राम हो, तो नवजात भालू का वज़न क्या होगा?"

"कोई आठ किलोग्राम," किसी ने कहा।

"नहीं-नहीं, ज़्यादा, इससे बहुत ज़्यादा," कोई और बोल पड़ा। "भालू क़रीब-क़रीब गाय के बराबर ही होता है और बछड़े का वज़न कम से कम २५ किलोग्राम होता है।"

दल में हर व्यक्ति ने कोई न कोई जवाब दिया, मगर सही जवाब किसी ने नहीं दिया, क्योंकि ५–६ किलोग्राम से कम वज़न बताने की हिम्मत कोई नहीं करना चाहता था।

जब पथप्रदर्शक ने यह बताया कि नवजात भालू का वज़न लगभग आधा किलो, अर्थात लगभग चूहे के बराबर होता है, तो सभी हैरत में आ गये।

मेमने आम तौर पर इससे दस गुने भारी होते हैं।

नवजात सेबल का वज़न लगभग ३० ग्राम और मुश्कबिलाव का वज़न १० ग्राम के क़रीब होता है।

इन बच्चों के वज़नों की उनकी मांओं के वज़नों से तुलना करो, तो तुम पाओगे कि नवजात भालू का वज़न अपनी मां के भार का ०.२७ प्रतिशत, नवजात सेबल का ३ प्रतिशत और मेमने का लगभग १० प्रतिशत होता है।
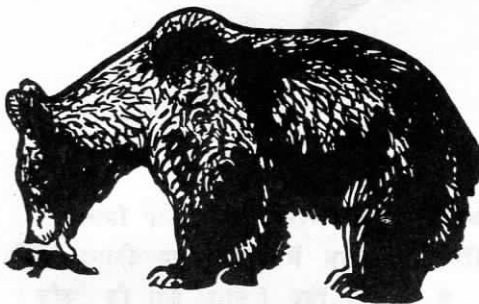
अपने जीवन के पहले दस दिनों में मुश्कबिलाव के वज़न में लगभग २४ ग्राम प्रतिदिन, सेबल में कोई १० ग्राम, मेमने में १८० ग्राम और भालू में केवल २.५ ग्राम की वृद्धि होती है।

इसका क्या कारण है? सुसंगतिमय प्रकृति इस मामले में क्यों इतनी असंगति होने देती है?

मादा भालू जनवरी में बच्चे देती

है। वह वसंत तक अपनी मांद में ही रहकर अपने बच्चों का पोषण करती है और शरद में अपने शरीर में संग्रहीन वसा तथा अन्य पोषक वस्तुओं के भंडार को ख़र्च कर डालती है। सरदियों में इस भंडार की ज़रा भी क्षतिपूर्ति नहीं होती, क्योंकि मादा भालू तब पानी तक नहीं पीती।

इससे यह समझा जा सकता है कि भालू माता सरदियों में छोटे से छोटे बच्चों को ही दुग्धपान करा सकती है। अगर भालुओं के बच्चे मेमनों के बराबर ही हुए होते, तो उन्हें कम से कम आधी बाल्टी दूध रोज़ की ज़रूरत होती।

इससे कुछ ही दिनों के भीतर भालू माता का सारा दूध सूख जाता और सारा परिवार मर जाता। सौभाग्यवश सभी जंतु अपने को अपने-अपने जीवन के अनुकूल कर लेते हैं।

वसंत तक शिशु भालू बहुत ही धीरे-धीरे बड़े होते हैं। मगर जब वे अपनी मां की मांद से धूप सेंकने के लिए बाहर आना शुरू करते हैं, तब वे अलग-अलग प्रकार के खानों को बड़ी मात्रा में भकोसने लगते हैं। वे पिछले साल की बेरियां, कंद, चींटियां, कृमि, कीड़े-मकोड़े, चूहे, मछलियां—यानी धरती के इन जागने के दिनों में उनके हाथ जो भी चीज़ लगती है—सभी खा जाते हैं।

इस समय से उनका वज़न कहीं ज़्यादा तेज़ी के साथ बढ़ने लगता है।

सभी तृणभक्षी पशुओं की तरह मेमने उस दूध की बदौलत मोटे होते हैं, जो उनकी मांओं द्वारा बारहों मास खाये जानेवाले चारे से पैदा होता है।

जल्दी ही मेमने ख़ुद भी चरागाहों में चरना शुरू कर देते हैं। यही कारण है कि वे अपने प्रारंभिक दिनों में कहीं ज़्यादा तेज़ी के साथ बड़े होते हैं।
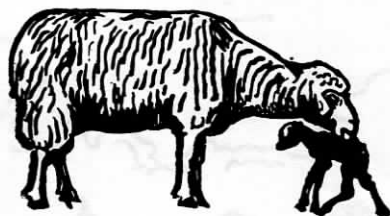
सेबल, मुश्कबिलाव और चितराला जैसे छोटे मांसभक्षी पशुओं के, जो अपने फुरतीलेपन पर निर्भर करते हैं, बच्चे अपेक्षाकृत छोटे होते हैं, जिससे मांएं अपनी गर्भावस्था के अंतिम दिनों में भी अपना पेट भरने में परेशानी का अनुभव नहीं करतीं, क्योंकि वे फुरतीली और तेज़ बनी रहती हैं। अगर ऐसा न होता, तो वे चूहों या पक्षियों को न पकड़ पातीं।

इन छोटे मांसभक्षी पशुओं के बच्चे बहुत तेज़ी के साथ बड़े होते हैं और पहले दस दिनों के भीतर अपने वज़न को लगभग तीन गुना कर लेते हैं। हां, उनके कर्तक दंत उनके भेदक दंतों और चर्वण दंतों के उगने के बहुत बाद निकलते हैं। ऊपर से यह मामूली विशेषता ही लग सकती है, मगर इसकी बदौलत शिशु पशु मां के स्तनों को हानि पहुंचाये बिना दुग्धपान करते रह सकते हैं। नवजात सेबल तथा मुश्कबिलाव अपनी आंखें तभी खोलते हैं, जब वे ख़ासे बड़े हो चुकते हैं – जब वे चौंतीस या छत्तीस दिन तक के हो चुके होते हैं।
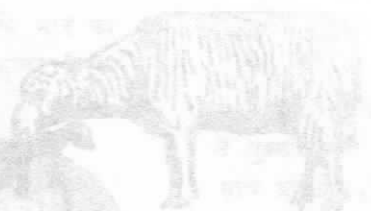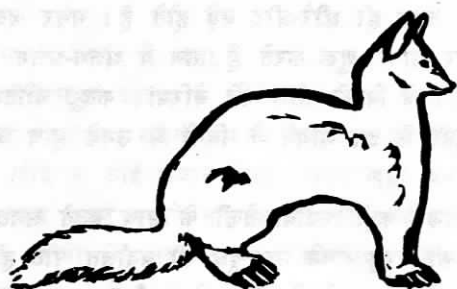
पंखदार ग्लाइडर

सितंबर के मध्य में एक दिन मैं सव्योलोव्स्क रेलवे लाइन पर ईक्षा स्टेशन के पास चुपका पक्षियों की तलाश में निकला हुग्रा था ग्रौर तभी मैंने दो पंखदार ग्लाइडरों को उड़ते देखा।

जवान गरुड़ों का एक जोड़ा एक ग्रसीम जंगल के ऊपर दक्षिण की तरफ़ उड़ता जा रहा था। वे ग्रपने पंख बड़ी मेहनत से चलाते हुए कोई १५० मीटर की ऊंचाई पर उड़ रहे थे। मैं यह देख सकता था कि गरुड़ थके हुए हैं ग्रौर काफ़ी दूर से ग्रा रहे हैं।

ग्राख़िर वे एक बड़ी वृक्षहीन जगह के ऊपर पहुंचे, उनके पंख निश्चल हो गये ग्रौर वे हवा में विसर्पण – ग्लाइड – करने लगे। वे उसी वृक्षहीन क्षेत्र पर चक्कर काटते-काटते ऊपर चढ़ने लगे, मानो कोई शक्तिशाली चुबक उन्हें ऊपर बादलों की तरफ़ खींच रहा हो। दस मिनट के भीतर ये ग्लाइडर ग्रासमान में नन्हे-नन्हे ज़र्रे बन गये थे। इसके बाद वे फिर दक्षिण की ग्रोर जाने लगे, मगर उनके पंख निश्चल ही थे। वे हवा में सचमुच के ग्लाइडरों की तरह उड़ते हुए धीरे-धीरे नीचे ग्रा रहे थे, मानो पहाड़ के हलके ढलान पर उतर रहे हों ग्रौर क्षितिज के ग्रागे ग्रांखों से ग्रोझल हो गये।

इसमें कोई ग्रसाधारण बात नहीं है। विसर्पण करते गरुड़ों को देखना हमारे देश में एक ग्राम चीज़ है। लेकिन दोनों जवान गरुड़ जब जंगल के ऊपर उड़ रहे थे, तब वे क्यों ग्रपने पंखों को इस तरह थके-थके चला रहे थे?

इसका जवाब यह है कि वृक्षहीन क्षेत्र की ज़मीन को धूप ने गरमा दिया था और वह वृक्षोंवाले क्षेत्र के मुक़ाबले कहीं ज़्यादा गरम थी। इसलिए जब गरुड़ वृक्षहीन क्षेत्र पर पहुंचे, तब गरम हवा की धारा ऊपर उठ रही थी और पवन की तरंग ने बिना प्रयास बड़ी ऊंचाई तक उठने में उनकी सहायता की। एक बार वहां पहुंचने के बाद वे शक्ति का उपयोग किये बिना बिलकुल उसी तरह विसर्पण कर सकते थे, जैसे ग्लाइडरचालक करते हैं, क्योंकि उनके यान में न इंजन होता है और न फड़फड़ानेवाले पंख।

सामान्यतः गरुड़ जितना विसर्पण करते हैं, उतना उड़ते नहीं। यही कारण है कि किसी खेत पर चक्कर काटते समय वे अकसर बहुत ऊंचे चढ़ जाते हैं।

मैंने जिन जवान गरुड़ों को देखा था, वे ज़ाहिरा तौर पर जंगल पर काफ़ी दूर उड़ चुके थे। वे ऊंचाई के अपने रिज़र्व का उपयोग कर चुके थे और अभी तक उन्हें कोई ऐसा वृक्ष-हीन क्षेत्र नहीं मिला था, जिस पर वे विश्राम कर पाते और पवन तरंग पर तैरते हुए ऊपर जा पाते। अपने बड़े-बड़े मोथरे पंखों को फड़फड़ाते हुए वे वृक्षों के ऊपर मुश्किल से उड़ते चले जा रहे थे।

हवाई जहाज़ या ग्लाइडर में उड़नेवाले हर व्यक्ति ने बिलकुल जवान गरुड़ों जैसा ही अनु-भव किया होगा – जंगल के ऊपर उड़ते समय हवाई जहाज़ अकसर – जैसा कि कहा जाता है – हवाई गर्त में गिरता रहता है, क्योंकि जहाज़ आम तौर पर ज़मीन की तरफ़ "दबा" होता है, जहां पवन की आकाशगामी तरंगें नहीं होतीं।

पक्षियों की उड़ान उड्डयन में बड़ी शिक्षाप्रद रही है और हवाई जहाज़ों तथा ग्लाइडरों के निर्माता इस बात का अध्ययन करते हैं कि पक्षी हवा में किस तरह उड़ते हैं।

पक्षी क़ैद में कैसे बच्चे देते हैं?

मास्को के चिड़ियाघर में कितने ही हरे और लहरियेदार छोटे-छोटे आस्ट्रेलियाई तोते हैं, जो तार की जाली से घिरे एक बड़े पिंजरे में रहते हैं। ये सुंदर और चटकीले पक्षी हवा को अपनी चहचहाहट से गुंजाते रहते हैं। आस्ट्रेलिया में ये तोते अपने बच्चे पेड़ों के खोखलों में जनते हैं और अन्य पक्षियों की तरह कभी घोंसले नहीं बनाते। हमारे चिड़ियाघर में भी वे अपने अंडे उन पक्षी पेटियों में ही दिया करते थे, जिन्हें हमने उनके पिंजरे में टांग दिया था। पक्षी पेटियों या पेड़ों के खोखलों के बिना वे न जोड़े बनाते थे, न अपने अंडों पर बैठते थे।

प्रयोग करने के लिए हमने यह मानते हुए तोतों के पिंजरे से सभी पक्षी पेटियों को हटा दिया कि एक बार बच्चे देना शुरू करने के बाद वे पिंजरे के फ़र्श पर अंडे देते हुए इस काम को जारी रखेंगे। मगर हमें घोर निराशा का सामना करना पड़ा – जोड़े बिखर गये और अंडे नहीं दिये गये। हमने पक्षी पेटियों को फिर टांग दिया और एक बार फिर तोतों ने जोड़े बनाये, अंडे दिये और उन पर बैठे। सोलह दिन बाद अंडों से रोमहीन और असहाय चूज़े निकले, जिन्हें दोनों जनक अपनी गलथैलियों से खिलाते थे।

मेरे एक बाल-जीवविज्ञानी ने मुझसे कहा, "अधिकांश पक्षी जो चिड़ियाघर में बच्चे नहीं देते, इसका कारण शायद यह है कि उन्हें वे अवस्थाएं नहीं मिलतीं, जिनमें वे हज़ारों सालों से घोंसलों में वास करते आये हैं। शायद उनमें विशेष पर्यावरण के लिए उसी जैसी प्रतिक्रिया पैदा हो गई है, जिसे पाव्लोव ने 'निरुपाधिक प्रतिवर्त' का नाम दिया है।"
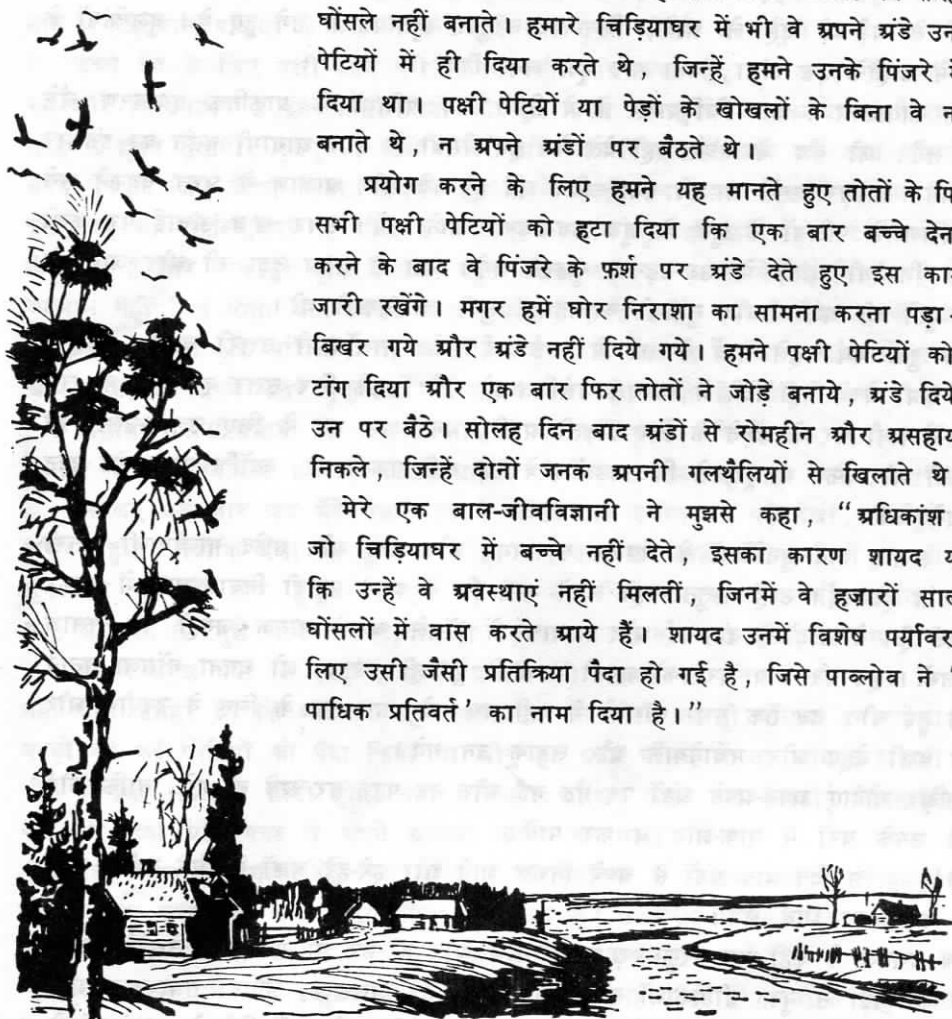
मैंने कहा, "अटकलें लगाने से अच्छा यह होगा कि हम उन पक्षियों के लिए स्वाभाविक परिस्थितियों का निर्माण करें, जो चिड़ियाघर में वर्षों से एक बार भी बच्चे दिये बिना रह रहे हैं।"

हम तन-मन के साथ इस काम में जुट गये। बच्चों ने हथगाड़ियों में पत्थर लाद लादकर तालाब पर पहुंचाये और उन्हें इस तरह लगा दिया कि उनसे छोटी-छोटी गुफाएं बन गईं। हर गुफा के फ़र्श में एक उथला-सा छेद था। चिड़ियाघर के दलदल में वे त्सारीत्सिनो के तालाबों से बड़े-बड़े ढूहे ले आये, जिन पर नरकुल बहुतायत से उगे हुए थे। बुलफ़िंचों के पिंजरे में उन्होंने एक ऊंचा, घना फ़र वृक्ष लगा दिया।

इस कायाकल्प के बाद चिड़ियाघर के ये हिस्से उन पक्षियों के प्राकृतिक पर्यावरण जैसे दिखने लगे, जो क़ैद में बच्चे नहीं देते थे। हम बेसब्री के साथ आगामी वसंत का इंतज़ार करने लगे। आख़िर वसंत आ ही गया – दिन लंबे हो गये और आकाश में भरत चहकने लगे और दक्षिण से पक्षियों के झुंड के झुंड उड़-उड़कर आने लगे। ऊपर ख़ूब ऊंचाई पर कूंजों के झुंड तिकोनी पांतों में उड़-उड़कर गुज़रने लगे। रात के समय टूंड्रा की ओर जानेवाले जंगली मुर्ग़ों की अजीब और सुरीली चहचहाहट सुनी जा सकती थी।

तब कुछ वर्ष पहले नार्वे के तट से लाई गई सफ़ेद गालोंवाली उत्तरी बतख़ें, जिन्होंने क़ैद में कभी बच्चे नहीं दिये थे, अत्यंत उत्तेजित हो गईं। उनके सिर उत्तर की ओर ही लगे रहते। वे पानी पर से उड़ने के लिए दौड़ती आतीं, मगर क्षण भर के लिए उलार-उलार ही उड़ पातीं और फिर मजबूरी से गिर पड़तीं। वे उड़ नहीं सकती थीं, क्योंकि उनके पंख काट दिये गये थे।

दो सप्ताह बाद मुर्ग़ाबियों के प्रव्रजन का समय बीत गया और सफ़ेद गालोंवाली उत्तरी बतख़ें शांत हो गईं। उन्हें वस्तुतः यही लगने लगा कि वे अपने उत्तरी निवासस्थान में जाकर उतर गई हैं। वे जोड़ों में बंट गईं और शिलाओं में घोंसले बनाने लायक़ जगहों की तलाश करने लगीं। हर नर अन्य नरों को अपनी मादा से दूर ही रखता, जो अपना घोंसला बनाने में लगी हुई थी। जब तक सभी घोंसलों में नहीं बस गये, तब तक के लिए ये डरपोक और ख़ामोश पक्षी बेहद शोर मचानेवाले और लड़ाकू बन गये।

आख़िर मादाएं अपने-अपने अंडों पर बैठ गईं और नर पहरे पर खड़े हो गये, ताकि कोई अजनबी उनके घरों में ताक-झांक न कर पाये।

कोई अट्ठाईस दिन बाद अंडों से बच्चे निकल आये और हरे-हरे चूज़ों से घिरे गर्वीले जोड़े तालाब पर नज़र आने लगे।

जब दलदल के ढूहों पर नरकुल ख़ूब ऊंचे-ऊंचे और हरे-भरे हो गये और उन्होंने विशेष रूप से बने गढ़ों से युक्त द्वीपिकाओं को छिपा लिया, तो नीलसरों, चैतियों तथा कुछ अन्य प्रजातियों की मुर्ग़ाबियों ने, जिन्होंने चिड़ियाघर में पहले कभी बच्चे नहीं दिये थे, वहां घोंसले

बनाना शुरू कर दिया। पानी पर अपने को बिलकुल चिपटाकर वे किसी की भी नजर में आये बिना नरकुलों में से रेंगती हुई ढूहे पर चली जातीं। वहां पर उन्होंने अपनी छातियों से रोएं उखाड़कर घोंसलों में बिछाये और अंडे देना शुरू कर दिया।

चौबीस से अट्ठाईस दिन के भीतर मनुष्यनिर्मित दलदल भांति-भांति की बतख़ों के बच्चों से भर गया।

न फ़र का पेड़ ही अकेला रहा। वहां बुलफ़िंचों के कई जोड़ों ने टहनियों, भूसे और उसी बाड़े में रहनेवाले पक्षियों के परों से छोटे-छोटे साफ़-सुथरे घोंसले बना दिये।

बच्चे देने के लिए पक्षी जिन परिस्थितियों को पसंद करते हैं, हम उनका अध्ययन करते रहे और चिड़ियाघर में इन परिस्थितियों को पैदा करने का हमने भरसक प्रयास किया। इस तरह से हमने तूतियों, बुलबुलों, काले तीतरों और जंगली ग्राउज़ों तथा कई अन्य पक्षियों को बच्चे देने के लिए प्रेरित किया। तथापि हम अपने गरुड़ों तथा अन्य शिकारी पक्षियों के लिए इस तरह की परिस्थितियां नहीं पैदा कर पाये। ये पक्षी बहुत ही ऊंचे पेड़ों पर घोंसले बनाने के आदी हैं और साथ ही चूंकि ये पक्षी बहुत ज़्यादा नहीं उड़ सकते थे, इसलिए उन्हें पर्याप्त व्यायाम नहीं मिल पाता था, जिससे उनकी पेशियां कमज़ोर हो गई थीं और उनके आंतरिक अंगों के कार्यों में कुछ परिवर्तन आ गये थे। अनुभव ने दिखाया है कि लाल बतख़ें तथा कुछ अन्य पक्षी, जो अपने कतरे हुए पंखों के कारण उड़ नहीं सकते हैं, क़ैद में बच्चे नहीं देते।

प्राकृतिक परिस्थितियों के अंतर्गत पक्षियों में – इक्के-दुक्के पक्षियों तक में – अपनी-अपनी प्रजाति के लिए विशिष्ट आवास संबंधी आदतों को छोड़ना तक बहुत ही विरल बात है।

इसलिए एक बार जब मैंने एक गरुड़ के घोंसले को ज़मीन पर पड़े देखा, तो मुझे बहुत अचरज हुआ, क्योंकि जैसा कि तुम जानते ही हो, गरुड़ ऊंचे पेड़ों की फुनगियों पर ही रहते हैं। मैंने डालियों और हड्डियों के एक बड़े ढेर को, जिस पर गरुड़ का घोंसला टिका हुआ था, उठाया, तो मुझे नीचे एक रेगिस्तानी पेड़ सकसाउल का गला हुआ तना नज़र आया।

तब मैं समझ गया कि गरुड़ ने अपनी प्रजाति की आदतों या प्रतिवर्तों को असल में छोड़ा नहीं था। ज़ाहिर था कि मादा ने पहले सकसाउल की चोटी पर ही घोंसला बनाया था और गरुड़ों की कई पीढ़ियों को पैदा किया था और हर साल घोंसले में नई सामग्री लगाती आई थी। घोंसला लगातार भारी होता गया था और आख़िर उसने इस कमज़ोर रेगिस्तानी पेड़ को तोड़ दिया और गरुड़ ने अपने आपको ज़मीन पर पाया।

नीड़-निर्माण की स्वाभाविक तथा अनिवार्य परिस्थितियों के अलावा पक्षियों के जोड़े बनाने को नियंत्रित करनेवाली अन्य परिस्थितियां भी होती हैं। उदाहरण के लिए, रुक आदतन बड़े-बड़े समूहों में रहते हैं और एक-दूसरे के बहुत पास-पास घोंसले बनाते हैं।

हमारे चिड़ियाघर में उन्होंने आज तक कभी बच्चे नहीं दिये हैं, क्योंकि यह लगता है कि घोंसलों के अलावा उन्हें उस शोर और पंखों की फड़फड़ाहट की भी ज़रूरत है, जिसका

रुकों की बस्तियों के जीवन ने उन्हें श्रादी बना दिया है। तट पर रहनेवाली श्रबाबीलों, गुलाबी तेलियरों श्रौर समूहों में घोंसले बनानेवाले श्रन्य पक्षियों के लिए भी यह एक श्रपरिहार्य शर्त है।

श्राम तौर पर इकहरे पक्षी श्रपने घोंसलों के पास ही भोजन करते हैं, इसलिए शिकार के लिए काफ़ी इलाक़ा सुनिश्चित करने के लिए एक-दूसरे के ज़्यादा पास घोंसले नहीं बनाते। श्रावश्यक दूरी का पक्षी स्वयं ख़याल रखते हैं, जो एक ऐसी बात है, जिस पर जोड़ाबंदी करते पक्षियों में श्रकसर झगड़े होते रहते हैं।

समूहों में रहनेवाले पक्षी (रुक, सामुद्रिक श्रबाबील तथा श्रन्य) खाने की तलाश में बहुत दूर-दूर तक जाते हैं श्रौर पास की पर्याप्त पूर्ति पर निर्भर नहीं करते। शिकारी पक्षियों का श्राखेट-क्षेत्र भी काफ़ी बड़ा होता है, क्योंकि इस बात की मुश्किल से ही श्राशा की जा सकती है कि छोटे-से श्राखेट-क्षेत्र से काफ़ी भोजन मिल पायेगा।

इस सबसे हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि हमें विभिन्न उपयोगी पक्षियों के घोंसला बनाने की परिस्थितियों का श्रध्ययन करना चाहिए, घोंसला बनाने की सबसे श्रच्छी जगहों की रक्षा करनी चाहिए श्रौर पक्षी पेटियां लटकाकर ही बस नहीं कर देनी चाहिए, जिनमें पक्षियों की केवल वे कुछ प्रजातियां ही रहती हैं, जो पेड़ों के खोखलों में श्रपने घर बनाती हैं।

सफ़री घोंसला

आख़िर हमारा जहाज़ चल पड़ा। मैं साज़-सामान से घिरा जहाज़ के पिछले हिस्से में खड़ा था। चारों तरफ़ रस्सियां और लंगर-चेनें, नावें लटकाने के कांटे और इसी तरह की दूसरी चीज़ें ही थीं, जिनके बारे में सिर्फ़ जहाज़ी लोग ही जानते हैं। मैंने उन सबको अच्छी तरह देखा, क्योंकि मैं जानता था कि उनमें कहीं पक्षियों के एक जोड़े ने घोंसला बना रखा है।
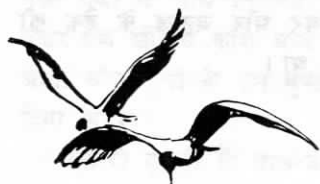
क़दम-क़दम करके मैं अपनी खोज में लगा रहा और आख़िर मैंने उन्हें ढूंढ ही लिया। एक नन्हे-से सुंदर पिद्दे ने डेक पर मोटे रस्से के लच्छे के भीतर अपना घोंसला बना रखा था।

पांच नन्हे-नन्हे रोमहीन चूज़े हलकी आवाज़ में खाने के लिए चीं-चीं कर रहे थे। उनके मां-बाप जहाज़ पर आदमियों के शोर-शराबे की परवाह किये बिना उनकी ज़रूरतें पूरी कर रहे थे।

यह घटना अराल सागर में सूखी मछलियां ले जाने-वाले एक जहाज़ पर हुई थी। जहाज़ दो हफ़्ते से ज्यादा मरम्मत के लिए रुका रहा था और इसी बीच पिद्दों ने यह जाने बिना कि उन्हें किस अचरज को देखना होगा, उसके डेक पर घोंसला बना लिया था।
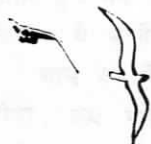
जहाज़ जब रवाना हुआ, तो वे इसके अलावा और कुछ नहीं कर सकते थे कि अपने जन्मगत तट से लगातार दूर जाते जहाज़ का अनुगमन करें।

अपने बच्चों का पेट भरने के लिए पिद्दे मक्खियों और जहाज़ पर मिलनेवाले अन्य कीड़ों को पकड़ लेते। जब हवा कीड़ों को जहाज़ से उड़ा ले जाती, तो पिद्दे
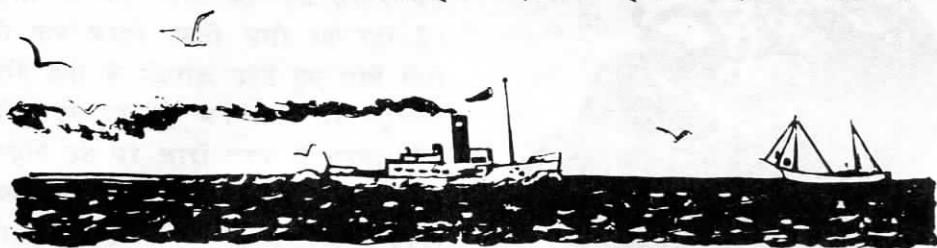
उनके पीछे-पीछे जाते और दूर-दूर तक लहरों के ऊपर उनका शिकार करते और उन्हें पकड़कर फिर जहाज़ पर आ जाते।

जहाज पर सवार लोगों ने ऐसा कुछ नहीं किया, जिससे उन्हें परेशानी हो।

जब जहाज़ तट के पास पहुंचा, तो पिद्दे उसकी तरफ़ उड़ गये और कुछ देर बाद चोंचों में कीड़ों का भंडार लेकर लौट आये।

उनका आचरण इस सिद्धांत का खंडन करता लगता था कि अगर घोंसलों को कुछ मीटर भी हटा दिया जाये, तो पक्षी उन्हें कदाचित ही ढूंढ सकते हैं। लेकिन इस मामले में जहाज़ एक चलते-फिरते टापू की तरह था, जिस पर घोंसला ख़ुद स्थिर और जहाज़ के डेक की और चीज़ों की तुलना में बिलकुल उसी स्थिति में ही रह रहा था।

कीटों में सहजबोध

एक सुहावनी सुबह को मैं अपने नन्हे दोस्तों के साथ मई दिवस के जलूस में जा रहा था। सड़कें लोगों से भरी हुई थीं और आदमियों की यह बाढ़ पटरियों पर और अहातों में ठेलमठेल कर रही थी।

एक जगह हम रुक गये। ऊपर हवाई जहाज़ घनघना रहे थे। टोली-टोली करके ये इस्पाती पक्षी तेज़ी के साथ निकलते गये और ज़मीन पर उनकी छायाएं फिसलती गईं। अचानक मेरी नज़र एक छोटे-से काले धब्बे पर पड़ी। वह एक भौंरा था। वह उड़ता हुआ सीधे मेरी तरफ़ आया और फूलों के उस गुच्छे पर आकर बैठ गया, जो मेरे बाल-मित्रों ने मेरे कोट पर लगा दिया था।

हमारी टुकड़ी के बाल-जीवविज्ञानी इस घटना को देखकर चकित हो गये। भौंरे ने फूलों की गंध को पकड़ लिया था – इस बात के बावजूद कि धूप से तपे कोलटार से उठती सैकड़ों और गंधों में वह बिलकुल दब गई थी।

मुझ पर तुरंत कीटों की संवेदनशीलता के बारे में प्रश्नों की झड़ी लगा दी गई और जवाब में मैंने कई और मिसालें भी दीं।

अपने विद्यार्थी जीवन में मैंने एक दुष्प्राप्य पतंगे को उसके ककून – कृमिकोष – से पैदा किया था। इस पतंगे का वैज्ञानिक नाम Orgia antiqua है। इस प्रजाति के नर के सुविकसित कत्थई-लाल पंख होते हैं, जिन पर सफ़ेद बिंदियां होती हैं और रोयेंदार कंघाकार शृंगिकाएं होती हैं। मादा के पंख नहीं होते और उसकी शृंगिकाएं लंबी और धागे जैसी पतली होती हैं। मैंने ककून से मादा को पैदा करके उसे जालीदार कपड़े की थैली में संभाल कर रख लिया। ये पतंगे अपने प्राकृतिक निवास – जंगल – तक में मुश्किल से ही मिल पाते हैं।

शाम को मैंने थैली को बरामदे में लटका दिया। सोचो कि मुझे कितना अचरज हुआ होगा, जब मैंने यह देखा कि मेरे ग्रीष्म कुटीर से कोई डेढ़ किलोमीटर दूर के जंगल से नर पतंगों की एक क़तार खेत को पार करती उड़ती चली आ रही है। पतंगे हवा के ख़िलाफ़ उड़ते हुए सीधे थैली की तरफ़ आ रहे थे। थैली पर पहुंचकर उन्होंने उस पर चारों तरफ़ से हमला बोल दिया और भीतर मादा के पास पहुंचने की कोशिश करने लगे। क्या उनकी "घ्राणशक्ति" सचमुच आश्चर्यजनक नहीं

थी, जो नरों को कोई डेढ़ किलोमीटर के फ़ासले से मादा के पास खींच लाई थी?

हम सभी ने कूड़े के ढेरों पर मक्खियों के बड़े-बड़े समूहों को उड़ते देखा होगा, लेकिन हममें से कुछ ही ने अपने से प्रश्न किया होगा कि मक्खियां अपने भोजन का पता कैसे लगाती हैं। खिड़की से सड़े हुए गोश्त का एक टुकड़ा तो बाहर फेंक दो—बड़ी सुनहरी मक्खियों की भीड़ उस पर टूट पड़ेगी, मानो वे उसके इंतज़ार में ही थीं। असल में उनमें से कई तो न जाने कितनी दूर से उड़कर आई होंगी।

उत्तरी हिरनों की नाकों और खालों को डंसनेवाली घुड़मक्खियां कभी-कभी तो २० किलोमीटर उड़कर अपने शिकार पर हमला करने आती हैं। मैंने १० या १५ मिनट पहले ही मारे गये पक्षी पर मुर्दाख़ोर गुबरैलों को बड़ी-बड़ी दूरियों से पहुंचते देखा है। अभी उसकी लाश ने सड़ना शुरू भी नहीं किया था, मगर मुर्दाख़ोर गुबरैलों और "मांस-मक्खियों" ने उसकी तरफ़ कूच कर भी दिया था। जब काफ़िले के ऊंट रेगिस्तान में लीद करते हैं, तो बड़े-बड़े गुबरैले न जाने कहां से तुरंत उड़कर उस पर पहुंच जाते हैं।

कीटों की यह अद्भुत विशेषता उनकी अत्यधिक संवेदनशील तंत्रिका कोशिकाओं के कारण है, जो उनकी शृंगिकाओं की आधार-संधि के पास छोटे-छोटे प्यालेनुमा विदरों में स्थित होती हैं।

नर तितलियों, पतंगों, कुछ मुर्दाख़ोर गुबरैलों तथा अन्य कीटों की शृंगिकाएं कभी-कभी कंघाकार होती हैं—अर्थात वे कंघे के दांतों से मिलती-जुलती हैं। इस अंग की इस बनावट के कारण उसकी संवेदनशील सतह कई गुनी बड़ी हो जाती है। हवा दर्जनों किलोमीटर दूर की गंध कीटों के पास ले जाती है और अभी तक यह कोई नहीं जान पाया है कि वह सिर्फ़ गंध को ही ले जाती है या किसी और चीज़ को भी। सतर्क प्रकृतिप्रेमियों ने कीटों को हवा के ख़िलाफ़ बड़ी-बड़ी दूरियों तक उड़कर मादाओं या भोजन की तलाश में जाते देखा है।

१९३६ की गरमियों में हमारे एक जाल-जीवविज्ञानी ने गोबर के ढेर पर ३० नीली-हरी मक्खियां पकड़ीं। उसने उन पर मैदा छिड़क दिया और अलग-अलग दूरियों से उन्हें ५–५ के झुंड में गोबर पर वापस उड़ आने दिया और इस तरह यह साबित किया कि मक्खियों को गोबर से पौन किलोमीटर दूर भी ले जाया जाये, तब भी वे उसे फिर ढूंढ सकती हैं। मैदा के कारण उसे अपनी मक्खियों को पहचानने में मदद मिली, क्योंकि वह उनके बालदार बदनों से चिपक गया था।

प्रयोगों से पता चला है कि अगर कीटों की शृंगिकाओं पर पैराफ़िन की परत चढ़ा दी जाये, तो वे भोजन का पता लगाने की अपनी सारी क्षमता को गंवा देते हैं, चाहे उसकी गंध कितनी ही तेज़ क्यों न हो।

बाल-जीवविज्ञानियों की खोजें

जो व्यक्ति वैज्ञानिक भाषण दे रहा था, वह नीकर पहने था और बाल-पायनियरों की टाई बांधे हुए था। उसके बाल श्रोता उसके हर शब्द को ध्यान से सुन रहे थे।

यह मास्को के चिड़ियाघर के बाल-जीवविज्ञानी मंडल की शारदीय बैठक थी, जहां बच्चे गरमियों में किये अपने खोज-कार्य पर विचार कर रहे थे। उन्होंने एक-एक करके अपनी-अपनी रिपोर्टें पेश कीं। उन्होंने कई दिलचस्प प्रेक्षण किये थे और कई बड़े ज़ोरदार प्रयोग भी।

अलेक्सांद्र गोश्कोंव ने बड़ी दिलचस्प कहानी सुनाई। उसने यह देखा था कि चींटियां बांबी के ऊपर अपनी परिणय उड़ान के बाद अपने पंख कैसे गंवाती हैं। अलेक्सांद्र ने कई चींटियों को एक विशेष मर्तबान में रख दिया और बारीकी से उनका अवलोकन किया। दूसरे दिन चींटियां परेशानी के आसार दिखाने लगीं। लगता था मानो उन्हें अपने पंखों की चिंता हो रही है। एक-एक करके वे दोहरी हो गईं और उन्होंने अपने-अपने पंखों को जड़ से काट दिया।

इस तरह अलेक्सांद्र ने निस्संदिग्ध रूप से सिद्ध कर दिया कि चींटियां अपने पंखों को आप काटती हैं और इसमें दूसरी चींटियां उनकी सहायता नहीं करतीं।

दो अन्य बाल-जीवविज्ञानियों – बोरीस वसील्येव तथा व्लादीमिर सीतिन ने गरमियां यही अध्ययन करते बिताईं कि चींटियां अपने घर में क्या भोजन एकत्र करती हैं। वे उनके आने-जाने के रास्ते के पास बैठ गये और उन्होंने उन्हें पकड़-पकड़कर उनके द्वारा ले जाई जानेवाली हर चीज़ को एक मर्तबान में डाल दिया। उन्होंने पाया कि चींटियों के भोजन में मुख्यतः कई हानिकर कीट और घोंघे थे।

बच्चे कोई दो घंटे चींटियों के एक आम रास्ते के पास बैठे रहे थे। यह जानने के लिए

उन्होंने गणित का सहारा लिया कि हर दिन बांबी में कितना खाना पहुंचाया जाता है। उस रास्ते द्वारा ले जाये जानेवाले खाने की माता को ५ से गुणा किया गया, क्योंकि इस तरह के पांच रास्ते बांबी को जाते थे और उसे फिर ५ से गुणा किया गया, क्योंकि गरमियों के उस हिस्से में चींटियां १० घंटे रोज़ काम करती थीं।

मास्को प्रदेश में पोदूश्किनो नामक गांव के पास यूरी सोकोलोव नाम के एक और बाल-जीवविज्ञानी ने बिज्जुओं द्वारा एक प्राचीन टीलेदार कब्र में खोदे बिलों का पता लगाया था। उसने अपने प्रकृति वैज्ञानिक अध्ययन का पुरातात्विक अनुसंधान के साथ संयोग किया, क्योंकि अपने बिल खोदते समय बिज्जू अकसर छोटी-छोटी चीज़ों को बाहर फेंकते थे, जिनका प्राचीन लोग दैनिक जीवन में उपयोग करते थे।

बोरीस गर्कावी इन गरमियों में क्रीमियाई पशु-संरक्षणालय में गया था और वहां उसने चिकारों का अध्ययन किया था। उसने अपने मित्रों को बताया कि चिकारों की एक आदत झाड़ियों के झुरमुटों के पीछे से लोगों पर भौंकना है। उसने कहा कि किसी दुश्मन या संदिग्ध दुश्मन के अचानक आ जाने पर सभी चिकारे ऐसा ही करते हैं। उसने बताया कि वे बहुत ज़ोर से भौंकते हैं।

व्लादीमिर सीतिन ने चींटियों के बारे में एक रिपोर्ट और पेश की। गरमियों में उसने देखा था कि काली छोटी चींटियां अलमारी में आ जाया करती थीं और वहां रखी चीनी तथा खाने की दूसरी चीज़ों को खा जाया करती थीं।

उसने बताया, "मैंने अपनी कुटिया के पास ही उनके निवास का पता चला लिया। रेंगती चींटियों की अविराम क़तार के पीछे-पीछे मैं बिलकुल वहीं पहुंच गया। मैंने उसमें मिट्टी का तेल डाल दिया। इससे उनकी शरारत का तो ख़ात्मा हो गया, लेकिन इसके बाद हमारी कुटिया में पिस्सुओं की भरमार हो गई। उनकी तादाद हर दिन बढ़ती ही जाती थी।"

व्लादीमिर ने अपने से पूछा, "पहले पिस्सू क्यों नहीं थे? क्या इसकी वजह यह हो सकती थी कि पहले चींटियां इन परजीवियों की इल्लियों को खा जाया करती थीं, जो लकड़ी के फ़र्श की दरारों में रहा करती थीं?"

इवान दनीलोव ने अपना ध्यान उल्लुओं की तरफ़ लगाया था। वह इस नतीजे पर पहुंचा कि उनके बच्चे बेहद खाऊ होते हैं।

"मैंने जिन मुआ–कानवाले उल्लुओं–का अध्ययन किया था," इवान ने बताया, "वे अपने तीनों बच्चों के लिए हर रात २५ चूहे तक लाते थे, मगर वे फिर भी भूखे ही रहते थे और ज़्यादा पाने के लिए शोर मचाते रहते थे।"

एक अन्य बाल-जीवविज्ञानी, यूरी स्तेइकर ने सूखा पड़ने के समय पशुओं के तौर-तरीक़ों का अध्ययन किया था। उसने विशेषकर यह बात देखी कि मधुमक्खियां, जिनका पास के एक

तालाब के मेंढक सफ़ाया कर रहे थे, कुएं में जाने की कोशिश करती थीं और इसलिए मधु-मक्खी-पालकों को पानी पीने के लिए विशेष पात्र रखने पड़े थे।

स्वर्णचटक, कौए तथा अन्य पक्षी सूखे के समय नदी से न जाने के इतने इच्छुक थे कि वे लोगों को काफ़ी पास आ जाने देते थे।

ये बाल-जीवविज्ञानियों के एक ख़ास छोटे दल के काम के कुछ नतीजे हैं। इनसे यह पता चलता है कि बच्चे कितने अच्छे पर्यवेक्षक होते हैं और वे बड़े रोचक प्रयोग भी कर सकते हैं, जिनसे कभी-कभी ख़ासे महत्वपूर्ण वैज्ञानिक निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।
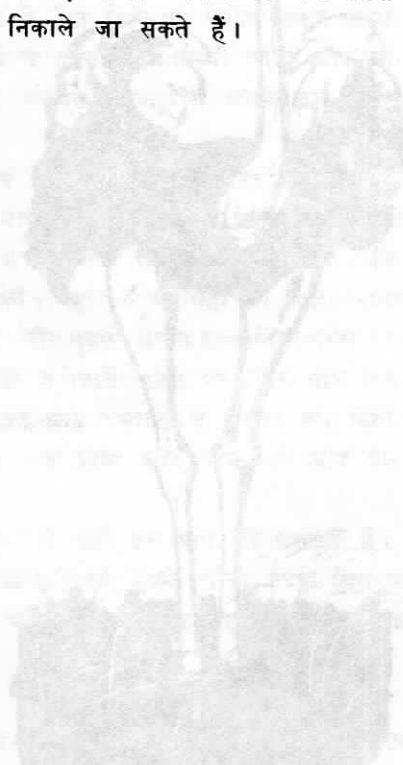
अस्कानिया-नोवा

(यात्रा-वृत्तांत)

अस्कानिया-नोवा पशु-संरक्षणालय उक्रइनी जनतंत्र के असीम स्तेपी के बीचों-बीच स्थित है। मैं वहां १६३४ में पहली बार गया था। मैंने वहां के विशाल, घने वनों को देखा और सुसिंचित तथा अतुलनीय रूप से उर्वर मिट्टी की सराहना की। वहां पेड़ों, झाड़ियों और घासों की वृद्धि अद्भुत गति से होती है और वे अत्यंत घनी हो जाती हैं।

अस्कानिया-नोवा एक विशाल प्राकृतिक तथा कृषि-प्रयोगशाला है। वहां किये जाने-वाले प्रयोग चूहों या ख़रगोशों पर नहीं, बल्कि अरना-बाइसनों, प्रज़ेवाल्स्की जंगली घोड़ों,* मृगों, शुतुरमुर्ग़ों, हिरनों, गाय-बैलों, भेड़ों, सूअरों आदि जैसे जानवरों पर किये जाते हैं।

प्रयोग के पशुओं को पिंजरों में नहीं रखा जाता है, बल्कि वे विशाल पशु-संरक्षणालय के वन में और अकृष्ट मैदानों तथा बड़े-बड़े बाड़ों में भी मुक्त विचरण करते हैं।

अस्कानिया-नोवा में जानवरों का केवल अध्ययन ही नहीं किया जाता, वहां उनकी नई और बेहतर नसलों का निर्माण भी किया जाता है। उदाहरण के लिए, उक्रइनी सफ़ेद सूअर नामक एक पूर्णतः नई नसल बर्तानवी सफ़ेद सूअर और स्थानीय स्तेपी सूअर के संकरण से पैदा की गई है। अपने स्तेपीवासी पूर्वजों से इस

---

*न० म० प्रज़ेवाल्स्की (१८३६–८८) – रूसी यात्री तथा भूगोलवेत्ता। जंगली घोड़ों की उस प्रजाति का वैज्ञानिक वर्णन करनेवाले पहले व्यक्ति, जो उन्हीं के नाम से ज्ञात हैं। – सं०

दोग़ले जानवर ने सरल स्वभाव और फुरतीलापन तथा अपेक्षतया नरम और लम्बे बाल प्राप्त किये हैं, जो उसे क्रूर हवाओं से बचाते हैं और अपने बर्तानवी पूर्वजों से अपना बड़ा आकार पाया है, जिसके फलस्वरूप सूअरों के वज़न में काफ़ी वृद्धि हुई।

मुझे लाल स्तेपी गाय और अरबी सांड़ ज़ेबू के संकरण से उत्पन्न पशु ख़ासकर पसंद आया। उक्रइनी गाय और जंगली भारतीय सांड़ – गयाल – के संकरण से उत्पन्न काले बछड़ों की सुंदरता से मैं बहुत प्रभावित हुआ। बड़े, प्रकाशपूर्ण बाड़ों में उक्रइनी गाय-बैलों के याक और ज़ेबू के मलेशियाई नसल के बांतेंग के साथ संकरण से पैदा किये गये जटिल संकर पशुओं के पास मैं काफ़ी-काफ़ी देर तक रुका रहा। खुले स्तेपी में द्रुतगामी बर्तानवी घोड़ों और प्र्ज़े-वाल्स्की जंगली घोड़ों के मेल से पैदा किये शानदार, मज़बूत गरदनवाले घोड़ों को देखकर मेरी आंखें अचरज से फटी रह गईं।

अरना-बाइसन, साइबेरियाई हंगल चीतल और हिरन लगभग ६० किलोमीटर की दूरी पर द्नेपर के तटवर्ती जंगलों में पशु-संरक्षणालय के बुर्कुती नामक एक विभाग में रहते हैं। हिरनों और अरना-बाइसन का एक झुंड वहां अस्कानिया-नोवा से ले जाया गया था। कोई १०० कि-लोमीटर का यह फ़ासला तय करने में उन्हें पांच दिन लगे। पहले वे चरवाहों की आज्ञा मानते रहे, मगर अपरिचित इलाक़े में पहुंचकर उत्तेजित हो गये, और मुड़कर वापस अस्कानिया-नोवा भाग आये। चरवाहों की निपुणता की बदौलत उन्हें बुर्कुती जानेवाले रास्ते पर फिर मोड़ दिया गया। मगर एक चीतल ने बुर्कुती पहुंचने पर चरवाहे का आदेश मानने से इन्कार कर दिया। वह ख़ूबसूरत जानवर सीधे अस्कानिया-नोवा की तरफ़ चल दिया और पांच घंटे बाद पशु-संरक्षणालय के जंगले पर पहुंच गया।

बुर्कुती के एक चरवाहे ने मुझसे कहा, "ये हिरन मेरी कही हर बात को समझते हैं।" वह उनसे इस तरह बोलता था, मानो वे मनुष्य हों और हिरन उसके चारों तरफ़ बिलकुल सामान्य घरेलू ज़ानवरों की तरह ही चरते थे। जब वह मुझसे यह कह रहा था, तभी एक हिरनी झुंड से अलग हो भाग गयी।

"अरे, किधर जा रही है?" वह चिल्लाया।

हिरनी खड़ी हो गयी, उसने अपने कान खड़े किये और आज्ञाकारितापूर्वक झुंड की तरफ़ लौट आयी।

जब अरना-बाइसनों को उनके बाड़ों में ले जाया जा रहा था, तब वे अचानक दूसरी ओर मुड़ गये और धूल के बादल उड़ाते उलटे भाग गये। इन विशाल जानवरों ने अपने सिरों को बड़े डरावने तरीक़े से ऊपर उछाला और उनके खुरों के नीचे ज़मीन कांपने और गूंजने लगी। चरवाहों ने कहा कि इसका कारण यह है कि उन्होंने हमें देख लिया है – नये आदमियों को देखकर उन्हें तौले जाने, नाप लिये जाने आदि अप्रिय कार्यों की याद आ गयी है।

जब चरवाहे इन झबरे बैलों या ख़ूबसूरत हिरनों को शांतिपूर्वक चराते हैं, तो देखने योग्य

दृश्य होता है। अस्कानिया-नोवा के स्तेपियों में उन्हें पालतू बनाया जा रहा है। मगर उस्सूरी प्रदेश के चीतलों को सरकंडों के झुरमुटों से अलग ही रखा जाता है, क्योंकि वहां पहुंचने के साथ वे वैसे ही वन्य बन जाते हैं, जैसे उस्सूरी प्रदेश के सरकंडे भरे जंगलों में वे थे।

काकेशियाई, सुदूर-पूर्वी और एशियाई फ़ेज़ेंट इस पशु-संरक्षणालय के पुराने निवासी हैं। उनसे स्थायी संकर पक्षी पैदा किये गये हैं, जो "शिकारियों के फ़ेज़ेंट" कहलाते हैं। ये सुन्दर पक्षी पशु-संरक्षणालय में बिलकुल घर जैसा ही अनुभव करते हैं। केवल कुछ साहसी पक्षी ही इसे त्यागकर कई दर्जन किलोमीटर दूर आज़ोव सागर के तटों पर उगनेवाले घने सरकंडों में बसने के लिए चले गये हैं। अस्कानिया-नोवा के वानस्पतिक संरक्षणालय में उनमें से दर्जनों पक्षी डरकर कज़्ज़ाक हपुषा की नीची झाड़ियों से उड़ भागे और अपने पेटों को ज़मीन से टिकाये-टिकाये पास आते आदमियों से दूर भाग गये। मगर अचरज की बात है कि अपने जंगलीपन और डरपोकपन के बावजूद यही फ़ेज़ेंट मुर्ग़ियों और बतख़ों के खिलाये जाने के समय कुक्कुट विभाग के अहाते में उड़कर चले गये। वहां वे पालतू पक्षियों के ही साथ-साथ दाना चुगते रहे और लोगों की तरफ़ उन्होंने ज़रा भी ध्यान नहीं दिया।

शरद में उत्तर से प्रव्रजन करनेवाले हज़ारों पक्षी अस्कानिया-नोवा में ख़ासा लंबा विश्राम करते हैं। नवंबर के मध्य में भी काली कस्तूरिकाएं अपना साहसपूर्ण गीत गा रही थीं। हमारे देश के सबसे छोटे पक्षी – पीले सिरोंवाले स्वर्णचूड़ – फ़र वृक्षों पर फुदक और चहचहा रहे थे। उत्तरी जंगलों में अगर मौसम बहुत ठंडा न हो, तो इन्हें कभी-कभी सरदियों में भी देखा जा सकता है। इससे लोगों को यह विश्वास पैदा हो गया था कि स्वर्णचूड़ प्रव्रजन करते ही नहीं। यह बात समझ में आनेवाली भी है – आख़िर वे इतने छोटे जो हैं।

लेकिन अंत में पता चला कि वे हज़ारों किलोमीटर पार करते हैं। १२ नवंबर को हमारा संरक्षणालय पीले सिरोंवाले स्वर्णचूड़ों से भरा हुआ था, मगर अगले दिन उनमें से एक भी वहां नहीं था।

यही बात सिस्किन के बारे में भी कही जा सकती है। एक सुबह मैंने उनके एक बड़े झुंड को बेफ़िक्री के साथ आल्डर के बीज चुगते हुए देखा। दोपहर को, मानो एक आदेश का पालन करते हुए वे सभी हवा में उठ गईं और एक छोटा घना बादल-सा बनाकर दक्षिण की ओर उड़ गईं।

संरक्षणालय में हज़ारों हैक्टर अकृष्ट ज़मीन है, जिसने कभी हल के स्पर्श का अनुभव नहीं किया है। घास, नागदौना, जंगली धान्य... भूरे ख़रगोश, गोफ़र, चंडूल और स्तेपी उक़ाब... यहां घास तक नहीं काटी जाती और शिकार या गोली चलाना वर्जित है। हां, जहां-तहां बीमार अफ़्रीकी मृगों, प्र्जेवाल्स्की घोड़ों और अस्कानिया-नोवा के अन्य निवासियों के लिए "सैनेटोरियम" अवश्य बना दिये गये हैं।

स्तेपी के कुछ भागों में तो इतने गोफ़र हैं कि लगता है कि अब और के लिए गुंजाइश

ही नहीं है। मगर इन जानवरों की आबादी की सघनता के बावजूद यहां की धान्य घास आश्चर्यजनक रूप से घनी होती है। स्थानीय चरवाहे कहते हैं कि जब गोफ़र उसे कुतरते हैं तो वह और भी घनी हो जाती है।

और ख़रगोश तो गोफ़रों से भी ज़्यादा हैं। अकृष्ट प्रदेश में मोटरगाड़ी में जाते समय हमारे आमने-सामने दर्जनों भूरे ख़रगोश भागे जा रहे थे। इलाक़ा सपाटा था और हम लगभग ४५ किलोमीटर प्रति घंटे की चाल से जा रहे थे, मगर इतने पर भी ख़रगोश हम से काफ़ी आगे ही रह रहे थे। यह कोई "रेकार्ड" रफ़्तार नहीं है, क्योंकि हमारे ड्राइवर का दावा था कि ख़रगोश ७० किलोमीटर प्रति घंटा या इससे भी तेज़ भाग सकते हैं।

लोमड़ियों की भी यहां कमी नहीं है। वे अधिकांशतः छोटे कृन्तकों का ही शिकार करती हैं, जो द्रुतगामी ख़रगोश के शिकार से बेशक आसान है। स्थानीय भूरे ख़रगोश लोमड़ियों के इतने आदी हो गये हैं कि वे उनकी शायद ही परवाह करते हैं।

मैंने दो भूरे ख़रगोशों को अपना पेट भरते और उनसे कोई चालीस क़दम की दूरी पर एक लोमड़ी को क़दम बढ़ाते देखा। ख़रगोशों ने उस पर एक नज़र डाली, अपनी पिछली टांगों पर बैठ गये, पर वहां से हिले भी नहीं।

...मैं अस्कानिया-नोवा से हवाई जहाज़ में रवाना हुआ। तेज़ हवा हमारे हलके दो सीटोंवाले जहाज़ को कंपकंपा रही थी। पायलट ने इंजन गड़गड़ाया और जहाज़ स्तेपी पर इस तरह दौड़ने लगा, मानो हम मोटर-कार में बैठे हों। जहाज़ का प्रापेलर घनघना रहा था। जहाज़ ने हवा के ख़िलाफ़ मोड़ लिया और हवा में उठ गया।

हम बहुत नीचे उड़ रहे थे और मैंने भीत ख़रगोशों को घास में से बाहर झपटते और गोफ़रों को अपने बिलों की तरफ़ ताबड़तोड़ भागते देखा। यह शरद ऋतु थी, जब गोफ़र आम तौर पर शीतनिद्रा में पड़ जाते हैं। वे अचानक पड़े पाले के कारण जाग गये होंगे, जो उनके उथले बिलों में प्रवेश कर गया था।

पहली निगाह में यह बात अजीब लग सकती है कि ये शीतस्वापी पशु, जिनका दैहिक ताप लगभग शून्य डिग्री सेंटीग्रेड तक गिर जाता है, ताप के और भी गिरने पर जम नहीं जाते, बल्कि गरमा जाते हैं और जाग जाते हैं।

हवाई जहाज़ से मैंने तूतियों, चंडूलों तथा अन्य गानेवाले पक्षियों के बड़े-बड़े झुंडों को देखा, जो लगातार तेज़ होती हवा से संघर्ष करते दक्षिण की ओर जा रहे थे। वे ज़मीन के बहुत पास थे। झबरे पैरोंवाले उत्तरी टीसे, जो सुदूर टूंड्रा से कृन्तकों का शिकार करने उड़कर आये थे, हवाई जहाज़ से काफ़ी नीचे ही रह रहे थे।

जब हम आज़ोव सागर की उपखाड़ियों पर से उड़ रहे थे, जहां दक्षिण की ओर जाती हज़ारों मुर्ग़ाबियां तट पर आराम कर रही थीं, तब मेरे लिए ज़मीन पर से आंखें हटाना मुश्किल हो गया। मैं हंसों को भी देख सकता था, जो जल पादपों से प्रचुर जगहों के ही

पास रह रहे थे। निर्मल जल में सागर-तल की हर चीज़ ग्रौर चमचमाते रुपहले शल्कोंवाली मछलियों के बड़े-बड़े समूहों को भी देखा जा सकता था।

ग्रस्कानिया-नोवा स्तेपी के सीमांत पर हमारे जहाज़ के नीचे एक लोमड़ी डर के मारे कभी इधर भाग रही थी, कभी उधर। फिर लोमड़ी ने ग्रपना सिर उठाया ग्रौर जहाज़ की तरफ़ ताकने लगी। ग्रस्कानिया-नोवा के जिस ग्रंतिम निवासी को मैंने देखा, वह यह लोमड़ी ही थी।

जहाज़ ग्रौर ऊपर उठ गया ग्रौर धुंध ने नीचे की हर चीज़ को ग्रांखों से ग्रोझल कर दिया।

पाठकों से

रादुगा प्रकाशन इस पुस्तक की विषय-वस्तु, अनुवाद और डिज़ाइन के बारे में आपके विचार जानकर अनुगृहीत होगा। हमें आशा है कि आपकी भाषा में प्रकाशित रूसी और सोवियत साहित्य से आपको हमारे देश की संस्कृति और इसके लोगों की जीवन-पद्धति को अधिक अच्छी तरह जानने-समझने में मदद मिलेगी।

हमारा पता है :

रादुगा प्रकाशन,
१७, ज़ूबोव्स्की बुलवार,
मास्को, सोवियत संघ।

प्रकाशित हो चुकी हैं:

सोने की चाबी : क़िस्सा बुरातीनो का। लेखक अलेक्सेई तोलस्तोय।

प्रख्यात रूसी लेखक की यह पुस्तक एक लोकप्रिय बाल-कथा है, जिसका नायक है कठपुतला बुरातीनो। बुरातीनो के रोचक, साह-सिक कारनामे बाल-मन की गहराइयों में सहज ही उतरते जाते हैं। कथाकार की चमत्कारिक लेखनी से तराशा हुआ कठबबुआ बुरातीनो बेहद फुर्तीला और जीवन्त हो उठता है। पढ़ते समय बाल-जिज्ञासा बढ़ती ही जाती है। रूसी बाल-साहित्य की इस कालजयी रचना को देश-विदेश में पर्याप्त यश मिला है।

रोबट और तितली। लेखिका विताउते जिलिन्स्कायते।

यशस्वी कथा-लेखिका की यह पुस्तक आधुनिक परीकथाओं का एक अनूठा संकलन है। इन कथाओं के पात्र पशु-पक्षी और जीव-जन्तु हैं। आधुनिक जीवन की रोशनी में झिलमिलाती, बाल-हृदय को लुभाती ये कथाएं नन्हे पाठकों का ज्ञानवर्द्धन ही नहीं करतीं, अपितु प्रेरक, रोचक और अनूठी भी हैं।